पंखुरियाँ गुलाब की

प्रोफ़ेसर (डॉ०) भूषणलाल कौल

परम आदरणीय प्रोफेसर टी.एम. शर्मा
के लिये सादर भेंट

25-12-2005

[signature]

२५.१२.२००५

पंखुरियाँ गुलाब की

पंखुरियाँ गुलाब की

प्रोफ़ेसर (डॉ०) भूषणलाल कौल
एम०ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्०

शोभा प्रकाशन
– 9419104787, 0191–2438676
E.mail: shoba_net@sanchamet.in

पंखुरियाँ गुलाब की

लेखक – प्रो० (डॉ०) भूषणलाल कौल

एम०ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्०

सेवानिवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर ।

प्रकाशकः– शोभा प्रकाशन, 7/7 नानक नगर, जम्मू।
9419104787, 0191–2438676

प्रकाशन वर्ष सन् 2006 ई0
प्रथम संस्करण 500 प्रतियाँ
मूल्य – 300/– रुपये

अक्षर संयोजन : शोभा क्रियेशन्स, जम्मू।

मुद्रकः–

उन समस्त बन्धुओं के प्रति
नतमस्तक समर्पित
जो सन् 1989 से आज तक
आतंक की भेंट
चढ़ गए ।

अनुक्रमणिका

उपोद्‌घात

'पंखुरियाँ गुलाब की' डॉ० भूषणलाल कौल की हिन्दी भाषा में लिखित दूसरी पुस्तक है। इस पुस्तक के निबन्ध/शोध-लेख समय की मार से प्रताड़ित जाति-बन्धुओं के मानस-विलोड़न की प्रतिध्वनि है जिसे सुनने को आतुर श्रोता/पाठक की मूक पुकार को पारिव्राजकता सम्पन्न डॉ० कौल ने विभिन्न अवसरों पर अपनी विशिष्ट सम्बोधन-शैली से उपस्कृत किया है ।

इन लेखों में जहाँ उल्लेख्य रचनाकार के विचार और लोक-विचार/लोक-धारणा का अन्तर्सम्बन्ध दृष्टिगत होता है वहीं निबन्धकर ने कृतियों के अध्ययन से उत्पन्न अपनी धारणाओं को ईमानदारी से सप्रमाण पाठक के सामने रखा है । कवियों, लेखकों की रचनाओं में सतही तौर पर जो तारतम्य असंलक्ष्य रहता है, विज्ञ अनुसंधित्सु ने प्रभावी ढंग से उनको प्रकटाया है। सन्दर्भ चाहे कहानी हो चाहे भक्ति प्रवाह जन्य सद्य पद्य।

बहुधा अपरिचित का परिचय कराना आसान होता है; यदि परिचित का पुनः परिचय कराया जाए वह रहस्योद्‌घाटन से कम कुतूहलपूर्ण नहीं होता है । साहित्य में निहित अपरिचित को अन-उद्‌घाटित बने रहने देने का व्यवहार अनाड़ी का होगा परन्तु तर्क संगत बनाकर उस अपरिचित को प्रस्तुत करना प्रतिभावान रचयिता का कर्म है या मेधावी अनुसन्धानरत कर्मशील व्यक्ति का ।

'रामायण' अथवा 'शिव परिणय' के अनेक स्थलों पर दी गयी टिप्पणियाँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं । निबन्धकार की तत्सम्बन्धी मान्यताएँ किसी भी लोकसाहित्य के अध्येता के लिए बहुमूल्य सामग्री है । रचना और रचनाकार के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों की चर्चा केवल सन्दर्भवश नहीं, रचना की अधिक पुष्ट समझ के लिए अनिवार्य है । अतः प्रायः सभी रचनाकारों के जीवनवृत्त असंगत नहीं समझने चाहिए । कविता-कहानी के सन्दर्भ में निश्चय ही नहीं ।

अध्यात्म के विभिन्न रहस्यों के चिन्तन-मनन में लेखक की समग्र-चेतना आर्द्र हुई लगती है । अध्यात्म केवल समय-विद्या मात्र नहीं है, अनुभव, घटनाओं-दुर्घटनाओं से जूझने-उभरने के भोग्य-भोग साक्षात्कारों का क्रम लगने लगता है । चिन्तन अथवा टिप्पणी के विषय स्वयं आध्यात्म-विभूतियाँ हों अथवा उन विभूतियों की वृत्ति लिखने वाले महानुभाव । इन परीक्षक-परीक्ष्य की अनुभूति के विषय-प्रवर्तन स्वानुभूत भी हैं तथा 'अनुभूति' के दिग्दर्शन भी। चर्चित साधकों के तत्त्वज्ञान और तत्त्वानुभूति में ऐक्य स्थापित करने की चेष्टा है अथवा परिश्रमी कौल के अपने व्यक्तित्व और साधना के प्रतिबिम्ब !

भक्ति प्रवाह जनित सद्य पद्य (नवोदित) लेखकों के प्रति 'एकला चलो रे' कहते हुए डॉ० कौल सभी का उत्साहवर्द्धन करते ख्यातनाम हो चुके हैं। 'पंखुरियाँ गुलाब की' में भी भक्ति विषयक़ अनुसन्धानपूर्वक ज्ञापन भी उपलब्ध है।

लेखकों और रचनाओं के पारखी डॉ० कौल केवल साहित्य तक सीमित नहीं हैं । उनके 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' के व्याख्यात्मक और मण्डनात्क विवरण रोचक भी हैं और अनुसंधानात्मक वक्तव्यों से परिपूर्ण भी । वस्तुतः कश्मीर से सम्बन्धित कोई भी विषय उनके अन्वेषण-क्षेत्र से बाहर नहीं । कितनी सामग्री को खंगाल कर 'शारदा गाँव, तीर्थ और विद्यापीठ' लिखा गया है ! यह अध्ययन की थाह और विस्तार दोनों का परिचायक लेख है।

विवेचित कृत्तियों और लेखों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करा कर, उनकी सराहनीयता को उजागर कराती हुई 'पंखुरियाँ गुलाब की' । प्रत्येक पंखुरी बाह्य के अपेक्षा रचना के आभ्यांतर पर बल देती हुई; रचयिता के अभीष्ट वक्तव्य और अभिव्यक्ति की बिम्ब-प्रतिबिम्बात्मक गुण-सम्पन्नता को लक्ष्य करती हुई; कथ्य-कथन को पर्याय से परे उद्घोषित करती हुई; भावानयन से विमुक्त स्वात्म का स्पर्श करती हुई; आगत-अनागत का सम्यक् आभास देती हुई; आलोच्य, आलोचक, साहित्य-साहित्यकार को द्रष्टा-स्रष्टा प्रमाणित करती हुई । 'पंखुरियाँ गुलाब की', स्वागत !

– प्राणनाथ तृछल

आत्मनिरीक्षण

(Introspection)

'पंखुरियाँ गुलाब की' हिन्दी भाषा में मेरा दूसरा शोध–निबन्ध संग्रह है।सांस्कृतिक दर्पण में कश्मीर का इतिहास प्रतिबिम्बित (reflected) है और पृष्ठभूमि है – साहित्यिक। जाने क्यों हम अपनी विरासत के प्रति उदासीन रहे हैं। दासता की स्वर्ण श्रृंखलाएँ धारण कर हमने जहाँ विदेशी शक्ति स्रोतों से अपनी तड़फड़ाती प्यास बुझाने की कोशिश की वहाँ गत शताब्दी के अन्तिम काल खंड में अपनी विशिष्ट पहचान (identity) की उपेक्षा करके हम दूसरों का चमन सजाते रहे और गर्वोन्नत हो वाहवाही पाने की प्रतीक्षा में रहे।

o o

विस्थापन ने हमें झँझोड़ा। यथार्थ की ठोस धरती पर पैर जमाते हुए हमने अपने खण्डित, अपमानित और उपेक्षित वजूद को तलाशना शुरु किया। बहुत से चेहरों के मुखौटे देखते ही देखते उतर गए और पथरीली भूमि पर गिर कर चकनाचूर हुए। स्वस्थ दिशा में निष्ठापूर्वक तलाश शुरु हुई। कई प्रतिभासम्पन्न कवि और कलाकार, गद्य लेखक और आलोचक साहित्य की प्रयोगशाला में अपने विगत से जुड़े शक्ति स्रोतों का पुनः परीक्षण करने लगे। मौक्तिक कणों की तलाश आज भी जारी है और किसी भी प्रतिष्ठित समाज के लिये यह गौरव की बात है।

o o

हिन्दी (राष्ट्र भाषा) के माध्यम से कश्मीर के सांस्कृतिक

शक्ति–स्रोतों पर सप्रमाण प्रकाश डालना और सम्पूर्ण राष्ट्र (विशेष कर हिन्दी भाषा–भाषी समाज) के सम्मुख अपनी प्रादेशिक पहचान के छविचित्र प्रस्तुत करना न केवल कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास के हित में है अपितु राष्ट्र–भाषा हिन्दी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को सुदृढ़ बनाने में भी सहायक होगा।

'कश्मीरी रामायण : विकास यात्रा के विभिन्न पड़ाव', 'शिव–परिणय', 'शारदा' (गाँव, तीर्थ और विद्यापीठ), एवं 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' पाठक वर्ग के सम्मुख कश्मीरी जन मानस, लोक विश्वास एवं आस्था के अद्‌भुत बिम्ब उभारते हैं। कश्मीरी रामकाव्य (रामायण) की उपेक्षा करके स्वर्गीय डॉ० कामिल बुल्के ने हमारी सांस्कृतिक विरासत के साथ कितना अन्याय किया है तथा अपनी अपर्याप्त जानकारी के कारण भारत में राम–काव्य के इतिहास को किस प्रकार गोलमोल कर दिया है, यह सब देखकर आश्चर्य होता है। मैं इस तथ्य को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि कश्मीरी राम कथा–काव्य में विषय गाम्भीर्य के साथ–साथ कलात्मक सौष्ठव का अद्‌भुत आकर्षण है।

o o

इस रचना में कुल तेरह निबन्ध संगृहीत हैं जिनमें आठ निबन्धों का सम्बन्ध विस्थापनोत्तर (सन् 1989–90 के बाद) कश्मीरी जन–मानस के साथ है। अपने ही देश में विस्थापित होकर तथा रिफ़्यूजी बनकर जीवन जीने की यातना सहते सर्जनात्मक कलाकार ने अपनी भीतरी प्रतिक्रिया किस प्रकार व्यक्त की है – अनेक दृष्टि–बिन्दुओं से इस पर विचार किया गया है। समय के विकृत सच को इतिहास के झूठे आवरण से बाहर निकाल कर तथा समाज के कठघरे में खड़ा करके हत्यारे अपराधी की तरह निर्णय (judgement) सुनने के हेतु प्रीक्षारत दिखाया गया है। हमने क्या खोया और क्या पाया – यह विचारणीय विषय है।

o o

प्रस्तुत शोध रचनाओं को हिन्दी में लिखने का मेरा उद्देश्य केवल इतना है कि पूरे राष्ट्र का जनमानस हमारे विगत (सांस्कृतिक वैभव) और हमारे वर्तमान (भारत में भारत के रिफ़्यूजी) पर शान्त मन से विचार करें क्योंकि इतिहास जिस तेज़ गति से करवट बदल रहा है उसमें कुछ भी असम्भव नहीं। भारत के किसी भी भाग में रहने वाला भारतीय कहाँ तक सुरक्षित है – यह विचारणीय है।

रचना में संगृहीत पाँच सांस्कृतिक निबन्ध विषाक्त वातावरण में एक प्रकार का मधु मिश्रण है। अपनी ही पहचान – इतिहास के मलबे के नीचे दबा इतिहास का सत्य–बहु–आयामी, ज्ञान वर्द्धक, आकर्षक और गरिमामय ।

मैं प्रोफ़ेसर (डॉ०) प्राणनाथ त्रछल, सेवा निवृत्त आचार्य, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, का अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने कृपा–पूर्वक मेरी रचना को देखा, पढ़ा, परीक्षण किया और भूमिका के रूप में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। मैं नतमस्तक मनसा उनका चरणस्पर्श करते हुए शुभहेतु प्रार्थना रत हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक को आप तक पहुँचाने में मेरे प्रिय बन्धु श्री राजेन्द्र रैणा का विशिष्ट योगदान रहा है। रचना की कम्प्यूटर कॉपी तैयार करने में उन्होंने निष्ठापूर्वक मुझे सहयोग प्रदान किया। उनके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा धर्म है।

o o

मैं अपने साधानात्मक जीवन के अनमोल क्षणों की चिर संचित पूंजी आपके सामने पेश कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि आपकी विवेक–दृष्टि, आलोचनात्मक प्रतिक्रिया और सुझाव मेरा मार्गदर्शन करेंगे। आपकी सन्तुलित समीक्षा मुझे जीने की प्ररेणा देगी।

इसी हेतु मैं प्रतीक्षारत रहूँगा।

भूषणलाल कौल

26 जनवरी, 2006.

विस्थापन का पूर्वाभास
(सर्जनात्मक कलाकार की नज़र में)

विस्थापन साहित्य का गहन अध्ययन करने के बाद मैं इस सोच में पड़ गया कि विस्थापन से पूर्व अर्थात् 1989–90 से पूर्व जब हम घाटी में येनकेन प्रकारेण जीवन निर्वाह कर रहे थे क्या कहीं भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास, पूर्व सूचना, चेतावनी, पूर्व बोध (premonition) साहित्यकारों की रचनाओं में देखने को मिलता है ? अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के हेतु मैं तलाश में जुट गया जो कुछ मैं खोज सका वही इस शोध–पत्र का विवेच्य–विषय है। खोज आज भी जारी है।

सन् 1986–87 ई० में जो दुखद घटनाएँ ज़िला अनन्तनाग कश्मीर में घटी और देवस्थलों की जो दुर्गति की गई वह पूर्वाभास नहीं था तो क्या था । यह इतिहास है कोई कल्पना नहीं। यथार्थ है, यथार्थ की अतिरंजना नहीं। लेकिन यह भी सच है कि कश्मीर के अल्पसंख्यक ने कभी यह सोचा भी नहीं था कि एक दिन स्वतन्त्र भारत राष्ट्र के नागरिक को भारत की सीमाओं के भीतर ही रिफ़्यूजी (शरणार्थी) बनकर जीना होगा । जलावतन होना पडेगा । निर्ममता के साथ सर्वानन्द कौल 'प्रेमी' को मौत की नींद सुलाया जायेगा – यह हमारी कल्पना के बाहर था । उस दुःखद समाचार को सुनकर मैं बहुत समय तक अपने आप पर विश्वास नहीं कर सका। आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी और लल्लेश्वरी के एक 'वाख' की ये पंक्तियाँ मानस में गूँज उठी :–

' चालुन छु वुज़मलुँ तुँ त्रटै
चालुन छु मन्दन्यन गटुँकार"

चालुन छु पान पनुन कडुन ग्रटै
ह्यतु मालि सन्तोष वाती पानै ।'[1]

निहत्थे सर्वानन्द कौल प्रेमी को उसके जवान बेटे के साथ पूरी निर्ममता से ज़ब्ह किया जाता है और कल तक ये यार दोस्त, चाहने वाले, हमसाया, रफ़ीक, शफ़ीक, आलिम, फ़ाज़िल, सुखनवर, ग्राम बन्धु, अथवा नगर निवासी चुप, एक दम चुप । ऐसा महसूस होता है कि दूर कहीं महादेव की चोटी के आसपास ललद्यद के एक वाख की निम्नलिखित पंक्तियों की अनुगूँज सुनाई देती है :–

तॅति कुस बा दारी थरबा
यॅति नॅनिस करतल प्यॅयी ।'

ईश्वर की कृपा से इस विस्थापन में नेता जनों की संख्या में ख़ूब वृद्धि हुई। इसमें सन्देह नहीं कि कई बन्धुओं ने अत्यन्त प्रशंसनीय काम किया है । राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्थापित समाज के अस्तित्व की पीड़ा मुखर हो उठी। कम से कम विश्व रंगमंच के बड़भैया तथा उसके देश वासियों ने यह स्वीकारा कि कश्मीर घाटी में एक प्रबुद्ध अल्पसंख्यक समाज पिछले 5000 वर्षों से भी अधिक समय से रहता चला आया है। युवा नेता–शक्ति के इस योगदान को स्वीकारना होगा। लेकिन पिछले 16 वर्षों से हम अपनी जाति के लिये एक मंच, एक ध्वज और एक लक्ष्य नहीं दे सके इसी सोच में घर बैठे एकान्तवासी जीवन जीते मैं उस स्थिति पर विचारने लगता हूँ जिससे विवश होकर लल्लेश्वरी ने कहा था –

क्या करॅु पांच़न दहन तॅु काहन
वोखशुन यथ ल्यॅजि करिथ यिम गयि
सॉरी समहन यथ रज़ि लमहन
अदॅु क्याज़ि राविहे काहन गाव ।'[2]

---

1. 'ललद्यद' – तृतीय संस्करण – प्रो० जियालाल कौल – सन् 1984 ई०; पृ० 92
2. – वही – वही – पृ० 66

सच है इतिहास अपने आपको दोहराता है यही कारण है कि लल्लेश्वरी का दृढ़ आत्म विश्वास भविष्य वाणी बनकर तमसान्धकार में आशा–दीप सदृश प्रज्जवलित है –

' असी ऑसि तुँ असी आसव
असी दौर कोर पतुँवथ '

अतः बेबस होकर जीवन के प्रति निराश होने की आवश्यकता नहीं। सेतु बान्धना होगा। यह मत भूलना कि –

' बबरि लंगस मुश्क नो मूरे
हूनि बस्ति कोफूर मलुँनुँ क्याह नेरे।'

स्वर्गीय दीनाथनाथ कौल नादिम ने सन् 1959 ई० में एक अतुकांत कविता लिखी है – चूर (चोर) । चल और अचल सम्पत्ति की बात छोडिये तनिक विश्वास की बात कीजिये। आज किसी ने तो हमारे विश्वास को ही लूटा है। लुटे पिटे मालिक को देश निकाला मिला है इसलिये हम वंचित रह गये हैं उन समस्त प्राकृतिक और सांस्कृतिक विभूतियों से जिनके सहारे सदियों हम मातृभूमि में जीवन निर्वाह करते चले आये हैं। हमारी आज की स्थिति स्वर्गीय दीनाथनाथ नादिम की ज़बानी :–

'म्य छु द्रामुत कुसताम चूर करिथ
नाहकै लारयोस छिटि पोंपुर छ़ारनि वारयन मंज़
आऽछ नार्टुं करिथ तम्बलोवुस अज़ताम रंगुँ छ़ायव
यतिकिन न्यो सोरुई कॉम ताम ग्व म्य फरिथ
ट्यकि तापुँक सोन्तुक हरदुक रंग
स्यति कालुँचि छ़ाँर्दुं तुँ शीनुँ शरत
असवुन शोक़ा वसवुनि माय
प्रयथ कुनि डू दिथ गव चूर
तुँ वोन्य क्या छुम बाक़ी।'

('शिहिल कुल' पृ० 110)

इस विस्थापन की पुनरावृत्ति कश्मीर के इतिहास में कई बार हुई है। पर–धर्मियों के अमानवीय व्यवहार से भयभीत होकर हमें कई बार प्राण रक्षा के हेतु पलायन करना पड़ा है और अनुकूल परिस्थितियों में हम पुनः लौट कर बहुसंख्यकों के साथ रहने लगे हैं। आज भी हम घर लौटने के लिये कृतसंकल्प हैं। लेकिन शर्त केवल इतनी ही है कि वह घर होगा ' ऋषि वॉर '।

बक़ौल नादिम :–

' असिवोत वुछान यी हाल लगै
यि छु सोरुई माया ज़ाल लगै
मिलुॅचार करिथ बदनाम स्पुॅद
ज़्यवि प्यठ खॅस्य खॅस्य लीलाम स्पुॅद
सोन आऽसिथ ज़न आऽस त्राम स्पुॅद
क्या ताम आसिथ क्या ताम स्पुॅद
असि वोत वुछान यी हाल लगै।'

('शिहिल कुल' पृ0 162)

सन् 1972 ई० में नादिम साहब ने एक कविता लिखी जिसका शीर्षक है – ' हे होश करिव' । एक महान कवि की रचना सार्वकालिक और सार्वदेशिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए वर्तमान में ही भविष्य का आभास (प्रतीति) कराती है। युग द्रष्टा होने के साथ–साथ कवि युग स्रष्टा भी होता है। हे 'होश करिव' कविता में वर्तमान का पूर्वाभास देखने योग्य है :–

' हे होश करिव हे होश
हे असि अॅन्दि पॉखि छि हयवान सोम्बरावुन
मॉलि हेयि हेयि बेयि नार
हे बेयि हमसायि छुॅ दानि कुछन मंज़
लोज़ुॅ बरान हथियार
हे बद बाऽतिन तॅस्य लारान लारान शोरस लॅग् अम्बार

हे प्राऽनि तमिय ब्ययि मोर्तुंक मोकल
सोज़नि लाऽग बमबार
हे बूलि लग्या बययि रतुँछपि लगनस
ख़ून मंग्या बेयि दार
हे अमन पसन्दौ टाठ्यो बायो बर् यिनुँ गछ़ि पम्पोश
हे होश करिव हे होश ।

('शिहिल कुल' पृ0 201)

एक बार पुनः स्मरण कीजिये दिसम्बर 1989 तथा जनवरी 1990 ई० जब कश्मीर मण्डल को अकस्मात् आतंक के ग्रहण ने ग्रस लिया और आज तक, शायद बहुत समय तक अब इसे मुक्ति पाना सम्भव नहीं। सर्वत्र अन्धकार तमसान्धकार। न्याय पर अन्याय की विजय, सत पर असत् की, सज्जन पर दुर्जन की, शक्ति हीन पर शक्ति सम्पन्न की और अल्पसंख्यक पर आतंक की। देखते ही देखते परिस्थितियाँ इतनी द्रुतगति से बदल गई कि आतंकित लोग अपना होश–हवास खो बैठे। यथार्थ अविश्वसनीय रूप में फन फैलाये नाग के समान डसने लगा और दिनोदिन ग्रहण का अन्धकार गहराता गया। राहु एक बार फिर ग्रह निगलने के हेतु टूट पड़ा । सन् 1973 ई० में लिखी 'ग्रहुण' कविता में इस अकस्मात् व्याप्त हुए आतंकी 'ग्रहुण' का पूर्वाभास देखिये :–

' हंगुँ मंगुँ वुनि वुन्य
शिनिहुँच कुनि आऽछ
वुदि गई अन्द वन्द
सोरुई केन्ह हय बुँगुँ तुँ दम फुटि
वुठि वुठि हयनि आय नज़रन हुन्दुँ मसवाल
तुँ माला माल स्पुद अनिगटि हुन्द बाड़व।'

('शिहिल कुल' पृ0 211)

वर्तमान दुर्दशा पर क्षुब्ध, व्यथित विस्थापित की मनःस्थिति का

पूर्वाभास सन् 1976 ई० में लिखित 'नादिम' की कविता 'बुजर' में देखिये :–

'कोत गई तापुॅन फोत् कोलुॅ रादन
कमि सरु वोतलियथ आव शिठन्यार
तेलि ओस प्रथ शुभि वरशुन वरतन
अज़ छुनुॅ च़्यथ दिथ कुनि दीदार
आमि पनुॅ सोदरस नावि लमान छुस
कति बोज़ि दय म्योन मयति दियि तार।'

('शिहिल कुल' पृ0 231)

सन् 1977 ई० में अपनी एक कविता 'आऽस आसुॅ सथ ब्यनि' में नादिम पूरे आत्मविश्वास के साथ आशामय भविष्य की सूचना देते हुए लिखते हैं :–

' पम्पोश फोलॅन
ग़म गोसुॅ च़लन
मन साफ़ गछि
अदुॅ शाप च़लि ।'

('शिहिल कुल' पृ0 235)

नादिम का जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्वस्थ स्वीकारात्मक है रुग्ण नकाकरात्मक नहीं । वे विश्वस्थ हैं कि अवश्य कल सूर्योदय होगा और स्वर्ण रश्मियाँ एक बार फिर स्वर्णिम आभा से हमें श्री सम्पन्न कर देंगी। वे पूर्ण आत्मविश्वास के साथ पुकार उठते हैं :–

' म्य छम आश पगहुॅच
पगाह शोलि दुनिया ।'

('शिहिल कुल' पृ0 62)

अतः विक्षिप्त जन–मानस का ढाड़स बन्धाते हुए विकासोन्मुख

प्रकृति एवं परिवर्तनशील मनुष्य चरित्र की स्वभावगत विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :–

' च़्यति वाती कुनि विज़ि वाऽर
चुँ पख हलपाऽर लगै
वाऽथ गछ़नय बरन्यन ताऽर
चुँ पख हलपाऽर लगै
कम रोख हाऽव यऽमि संसाऽर
चुँ पख हलपाऽर लगै।
यिम बंगलुँ छि आसन वाऽल
युहुन्द दुनिया छु अलग
हुमुँ पाहरि छि ज़ख्मन क्राऽल
युहुन्द दुनिया छु अलग
आऽड आऽकुँल आऽड यति चाऽर
चुँ पख हलपाऽर लगै।
च़्यति वाती कुनि विज़ि वाऽर
चुँ पख हलपाऽर लगै।

('शिहिल कुल' पृ0 91–92)

स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल 'साक़ी' ने वस्तुस्थिति को न केवल अपनी आँखों से देखा था अपितु भोगा भी था। 'नादिम' की तुलना में 'साक़ी' अधिक जनमानस के क़रीब थे। अरे वे तो एक अल्हड़–फक्कड़–मस्त मौला किसान थे। अपनी एक नज़्म में सामयिक यथार्थ से उत्पन्न प्रतिक्रिया को भविष्यवाणी के रूप में मुखर करते हुए लिखते हैं :–

'अहरेज़ुँ ववन
जंगलन ह्ययि नार ....
लहवर्नुं यियी बुतराथ
जानावारन फुटन पखुँ

कुनुई ज़ोन खोदाय रोज़ि वुछान
न आस्यस पथ कॉंह
तुँ न ब्रोंह

("मनसर – 'साकी" पृ० 74)

और ऐसी स्थिति में :–

' दपान ....
युस बडि कथ करि
तस चीरन होट
हुँकुँ शाह हेयि ....
शाह रगि वाव दिनस
जानुँई गव ....
ख़ोर वाऽहरिथ बरन साऽरी सोऽख

("मनसर – 'साकी" पृ० 7)

विस्थापन में जीवन जीना और अस्तित्व को बचाये रखना कभी–कभी कितना असम्भव होता है इसका अनुमान वही लगा सकते हैं जो इस संकट ग्रस्त जीवन को पिछले सोलह वर्षों से जी रहे हैं। जून का महीना, सड़कों से बहता तारकोल, ताप से तपे हुए प्यासे नलके और बेहाल राशन और 'रिलीफ़' की लाइन में खड़े विस्थापित को 'साकी' की इस नज़्म के परिप्रेक्ष्य में देखिये :–

ताऽच़ दज़वुनि वुहवुनि
तीलुँ सड़क
शिन्हा प्यठुँ साऽदरस काड़ दितुन
दोदुँ गामुक सोख न्यून
गुलि मूरिथ
ताऽच़ दज़वुनि वुहवुनि

तीलुँ सड़क ।

('मनसर – ' पृ0 78)

प्रायः कहा जाता है कि एक अनुभूतिशील कवि अपनी निश्छल एवं सहज भावाभिव्यक्ति के आधार पर आने वाले कल की पूर्व सूचना किसी न किसी प्रकार से अवश्य देता है। हाँ, उनकी नज़र बहुत दूर तक जाती है उफ़क़ (क्षितिज) के उस पार बहुत दूर। शायद यही कारण था कि लल्लेश्वरी कलियुग के हाहाकारमय जीवन की पूर्व सूचना देते हुए कहती है :–

'ब्रोंठ कॉल्य आसन तिथी केरन
टंग चूँठि पपन चे़रन सूत्यि ।'

आज आतंकित विस्थापित की उधेडबुन का पूर्वाभास 'साक़ी' की इस नज़्म में देखने योग्य है :–

' बुतराथ श्रोकेमुँच़
गोलरस सोम्ब
पदि पदि वथ राऽविथ मीचुँर काऽड
हय बुँगुँ छि सोन्तुँक साज़नदर
अलुँ त्रोजि ग्व इन्सान
तावन ज़द
पथ नेऱ्या
किनुँ तुलि ब्रोंठ कदम।'

('मनसर' पृ0 82)

और आज ज़िन्दगी हमारे लिये नाज़ुक कच्चे दागे के समान अविश्वासिक बन गई है :–

' सानि बापत ज़िन्दगी ओछ़ ओम पन
ग्यनि गयस या वर लोगुस मोक्लयोव छ़्योन।'

('मनसर' पृ0 89)

इसमें सन्देह नहीं कि आज कश्मीर घाटी में क़बरिस्तानों का फैलाव नित सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा है और चिताओं की धूम्राच्छादित लपटें माहौल को संगीन बना देती हैं। छिप कर वार करने में माहिर आतंकी रोज़ जाने कितने परिवारों के चिराग गुल कर देते हैं। हिंसा की विनाशकारी अग्नि में सब धू धू कर जल रहे हैं। आज जहाद के नाम पर क्या कुछ नहीं हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय षड़यन्त्र से प्रेरित तथा प्रोत्साहित संहार–लीला में रोज़ इन्सानियत का ख़ून हो रहा है तिस पर तुर्रा यह कि हम कश्मीरियत के अलमबरदार हैं । बक़ौल साक़ी –

' क़बरि हुन्द आलव कनन छुम गथ करान
आवरन्य छम आऽस वाऽहरिथ दारि तल
म्यानि रंगुँ मन्दोरि गव कर्नुवेरि त्रास ।'

('मनसर' पृ॰ 105)

मानव मूल्यों का ह्रास और आर्थिक पराभव आज देश को शक्तिहीन बना रहा है। दस करोड़ से भी अधिक धन राशि आज प्रतिदिन जम्मू कश्मीर में आतंक को रोकने के लिये व्यय हो रही है और यह स्थिति वर्षों से चली आ रही है। सम्पूर्ण देश का आर्थिक ढाँचा ही डगमगा रहा है। कीमतें आसमान को छू रही हैं और वस्तुओं को खरीदने की शक्ति लोगों में कम होती जा रही है। बाज़ार में माल बहुत है – देशी विदेशी लेकिन गाहक नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो विश्व राजनीति के रंगमंच पर सुसभ्य सम्पन्न राष्ट्रों की दुरंगी और दुमुँही नीतियाँ पहचान कर आदमी काँप उठता है। समझ में नही आ रहा है कि दुश्मन सब से अधिक ख़तरनाक है या दोस्तनुमा दुश्मन। साक़ी की एक ग़ज़ल में वस्तुस्थिति का पूर्वाभास देखिये :–

तहज़ीबुंचि यथ बस्ती मन्ज़
इंसाऽन क़दरन हुन्द काऽहकास
बाज़र माऽल्य ह्योत बापारयौ

वर्लु पथ फेरव वथ नमनास
कम कम यूसुफ दावस लाऽगि
अपज़्यारयौ वाऽट लछ तय सास
यिनुँ सॉ लाऽग्यूम पज़रुच हाँऽछ़
यथ समयस आव अपजुई रास।'

('मनसर –ग़ज़ल– पृ0 113)

हताश और खिन्न विस्थापित कभी–कभी निराशावस्था में परम ब्रह्म के सम्मुख नतमस्तक होकर साक़ी के शब्दों में इस प्रकार निवेदन करता हुआ दिखाई देता है :–

'म्य छा येथि आवल्युन्सुँई मंज़ कडुँन दोह
म्य क्युत छा बोग लीखित माग तय पोह
हना इंसाफ़ कर वोन्य आवसिथ प्योस
ग़मव थोवमुत करिथ कायायि छुम तोह ।'

('मनसर – रुबाई सं० 104,पृ० 57)

सन् 1979 ई० से पहले साक़ी द्वारा लिखित 'मेहमान' शीर्षक कविता में सन् 2005 ई० अर्थात् समकालीन कश्मीर का पूर्वाभास देखने योग्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्जनात्मक कलाकार अपने मानस के भीतर ही प्रकृति के द्रुत बदलते रंगों को निहार रहा है। साक़ी ने वर्षों विस्थापन की पीड़ा सह ली। ऊधमपुर में कुछ समय रहने के बाद बनतालाब जम्मू में रहे। भीषण ताप, प्रकृति के प्रकोप और सांसारिक छल–छलावे ने उन्हें ज़िन्दगी के प्रति उदास बना दिया था। अपनों और परायों का उपेक्षामय व्यवहार सहते सहते वे निस्सन्देह विषयपायी बन गये थे। 'मेहमान' शीर्षक कविता में, जो सन् 1979 ई० से पहले लिखी गई है, दुर्दशाग्रस्त कश्मीर का पूर्वाभास देखिये :–

'यथ मन्दोरि छि पाऽयिल डजुँमुँच़
मुदवारस छस त्राय न्यबर कुन
क्रोचि साऽय गाऽमचुँ ब्योन ब्योन

डबि क्रायन छिस डख दूरेमुतुँ
शेरि लबन छुस कोब ह्यूह द्रामुत
यिनुँ सँ कुनि अन्दुँ लब यियी नीरिथ
वोथ सँ बाया न्यबरूई नेरव।'

('मनसर – 'साक़ी'' पृ0 100)

इसमें सन्देह नहीं कि एक जन्मजात हसास कवि अपने वर्तमान में ही निकट भविष्य का सही अनुमान लगा लेता है । अपने समकाल के यथार्थ से टकरा कर वह भविष्य की दहन का अनुमान लगा सकता है। महाकवि सूरदास ने नेत्रहीन होते हुए भी गोपाल के एक एक छवि चित्र का अंकन सहज रूप में किया है। शोधार्थी सन्देह में पड़ जाते हैं कि क्या सचमुच सूरदास नेत्रहीन थे।

लगभग 25 वर्ष पूर्व श्रीमती और श्री गोपीनाथ रैणा (एक नेत्रहीन अध्यापक दम्पत्ति) के घर ज़ैनाकदल श्रीनगर में मैं वासुदेव रेह से मिला हूँ । मुझे लगा कि वे दोनों श्री गोपीनाथ और वासुदेव रेह दिव्य ज्योति सम्पन्न थे और मैं नेत्रहीन उनके पास बैठा कविता पाठ सुन रहा था । मैंने वासुदेव रेह से निवेदन किया कि अपनी कुछ प्रिय रचनाएँ सुनाने का कष्ट करें। स्वर्गीय रेह ने गम्भीर स्वर में एक रचना सुना कर मुझे सचेत किया – 10 वर्ष बाद घटित होने वाले घटना चक्र से । रेह की बन्द आँखों में ग़ज़ब का प्रकाश निहित था। वे उस समय भी दस वर्ष बाद जल रहे कश्मीर को अपनी आँखों से देख रहे थे। बन्द कमरे में उनकी गहन गम्भीर आवाज़ गूँज उठी। काश ! 'रेह' आज जीवित होते और उसी कविता के कुछ बन्द मेरे मुँह से सुनते।

इस कविता में सकमाल का पूर्वाभास देखने योग्य है :–

माने बूज़िव यिमन कलामन होशा होश
आलव म्योन यि शामन शामन होशा होश
दाय म्यँ यी द्युन खासन आमन होशा होश
आलव म्योन यि शामन शामन होशा होश

यिनॅु सॅ आलव म्योन गछ़यौ कऽनि पऽति
तुॅ यि बूज़िथ मशॅुराऽविव
यिनॅु सॅ पनुन अज़्युक या पगहुक सोंचुन
ब्ययिनॅुइ प्यठ त्राऽविव
मोख़्सर थाऽवज़्यव नज़र अंजामन होशा होश
आलव म्योन यि शामन शामन होशा होश ।
म्यॉनि यहय क्रख शहरन गामन होशा होश
आलव म्योन यि शामन शामन होशा होश '।

('शब गरुद' – 'रेह' – पृ० 33–34)

जीवन के प्रति कवि का सकारात्मक दृष्टिकोण तपते रेगिस्तान में भी जीवन जीने की प्रेरणा देता है। खोना तो मौत है और कवि मौत को भी चुनौती देता हुआ प्रातः सूर्योदय की स्वर्ण रश्मियों के स्वागतार्थ प्रतीक्षारत दिखाई देता है। हमें पार उतरना है, यह सत्य है कि आज हमारी नैया भँवर में उलझी हुई है लेकिन धैर्य और साहस के साथ वस्तुस्थिति का सामना करते हुए हमें दिशा अवश्य मिलेगी और गहन मेघ खण्ड़ों का वक्ष चीर कर प्रकाश की स्वर्णरश्मियों से हमारा वर्तमान दीप्त हो उठेगा । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बहादुर जीवन में एक बार मरता है, बार बार नहीं :–

म्योन सदा गव खॉलिस बायो होश हबा
हुशियार हबा
यथ समसारस नाहमवारस चारॅु दिनस छुनॅु तार हबा
क्याज़ि रछुन आराम छु तवॅु किनि आरामस
छुनॅु वार हबा
युथ नॅु हयमुच हुन्द त्राऽविव दामन होशा होश
आलव म्योन यि शामन शामन होशा होश ।'

('शबगरुद' –'रेह' –पृ0 34)

सर्जनात्मक प्रतिभा के धनी पण्डित सर्वानन्द कौल 'प्रेमी' को

जब उसके जवान बेटे के साथ कश्मीरियत के ध्वजवाहकों ने मौत की नींद सुला दिया तो उस दिन समस्त प्रकृति का कण–कण काँप उठा। तथाकथित इन्सान की हैवानियत से यमराज भी कुछ क्षणों के लिये थरथरा उठे। ऐसे महापुरुष के असामयिक और अप्राकृतिक निधन पर वर्षों पहले 'रेह' ने जिगर चीर देने वाली भावानुभूति को यों आकार प्रदान किया था। 20 वर्ष पूर्व लिखी गई कविता सन् 1990 ई० में सार्थक सिद्ध हुई :–

अख किताबा तसुॅन्ज़ ज़िन्दगी योसुॅ परिथ
ज़िन्दगी हुँद स्यठाह सिर अछन तल यिवान
मौत ताऽमसुन्द वुछिथ पछ़ बड़ान आदमस
ज़िन्दगी दिथ छि स्पदान अमर ज़िन्दगी
आय वाराह तुॅ गई, दफ मुबारक तिमन
नाव पथ कुन थविथ यिम रवादार गई ।'

('म्यॉनि वच़न' – 'रेह' सन् 1975 ई० – पृ0 32)

निष्कर्ष:–

1. मैं एक बार फिर इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि एक आम कश्मीरी अल्पसंख्यक ने कभी यह सोचा तक नहीं था कि घर–द्वार छोड़ कर रिफ़्यूजी बनकर घर घर भटकना होगा। लेकिन हसास साहित्यकार वस्तुस्थिति को अपनी आँखों से देख रहा था। उसकी यही तो विशेषता है कि वह भविष्य द्रष्टा होने के साथ–साथ तथ्यान्वेषक भी होता है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में वह भावी जीवन के घटना चक्र का संकेत अवश्य देता है। मैं मानता हूँ कि उन्होंने देश निष्कासन की सम्भावना पर कभी नहीं सोचा होगा पर कश्मीर का इतिहास लिखित–अलिखित रूप में उनकी नज़रों के सामने था और वे इसके सच और झूठ से भली भान्ति परिचित थे। जो घटना पहले कई बार घट चुकी है उसके पुनः घट जाने की सम्भावना से कौन

इनकार कर सकता है। गरज़ भविष्य असुरक्षित, धुँधला, भयावह, रंक्तरंजित और घने कुहासे से आच्छादित है – उन्हें ऐसा आभास हो रहा था और उसकी पूर्व सूचना उन्होंने यत्र तत्र अपनी रचनाओं में दी है।

2. मुझे आज भी याद आ रहा है कि जब हिन्द–पाक हाकी/क्रिकेट मैच खेला जाता था तो कश्मीरी हाँगुल की खूब पिटाई होती थी। अगर पाकिस्तान मैच जीत जाता तो हांगुल को इस लिये पीटा जाता था कि वह शादमानी में सम्मिलित नहीं हो रहा है तथा उसने अपने घर को मोमबतियों से रोशन नहीं किया और अगर पाकिस्तान हार जाता तो पराजय का सारा गुस्सा उस पर उतार दिया जाता । पिटाई के साथ–साथ जिह्वा के चाबुक भी ख़ूब चलते थे।

भविष्य में क्या होने वाला था इसकी इबारत वर्षों से दीवारों पर उत्कीर्ण की हुई थी। हम इबारत बिना पढ़े आँखें मूँद कर चल देते थे तो वह दोष हमारी नज़र का है। हमने कभी पूर्वाभास को गम्भीरता पूर्वक नहीं लिया। हम इस भ्रम में रहे कि सुरक्षा की व्यवस्था दुर्भेद्य है। जनवरी सन् 1990 ई० में जब विस्थापन हो रहा था मुझे मेरा एक बन्धु श्रीनगर के लालचोक में मिला, मैं ने पूछा आप कहाँ जा रहे हैं ? तो उन्होंने कहा – किचन नये सिरे से बना रहे हैं । हल्के नीले रंग की फ्रेंच टाइल्ज़' खरीदने जा रहा हूँ। मैं अवाक् रह गया और उसके लोटस ईटर (स्वप्न विलासी) होने का बोध तब हुआ जब दो महीने के बाद जम्मू में रिलीफ़ कमिश्नर के कार्यालय के सामने उसे कतार में खड़ा देखा।

3. विस्थापन के इस पूर्वाभास को देखने के हेतु सर्वश्री पण्डित पृथ्वीनाथ कौल 'सायिल', अर्जुन देव मजबूर, नाटककार स्वर्गीय डा० शंकर रैणा, हृदय कौल भारती, प्राण किशोर, बन्सी निर्दोष, काशीनाथ बागवान, रत्नलाल शान्त, शशिशेखर तोषखानी, मोहन निराश, चमनलाल चमन, मोतीलाल नाज़, मोहनलाल आश तथा मक्खनलाल कंवल की रचनाओं का पुनः विश्लेषण नितान्तावश्यक है।

4. यह पूर्वाभास न केवल कविताओं में अपितु गद्य विशेष कर कथात्मक गद्य की कई विधाओं में भी देखने को मिलता है । इस दृष्टि से सर्वश्री सोमनाथ जुत्शी, उमेश कौल, हरिकृष्ण कौल, रत्नलाल शान्त, औतार कृष्ण रहबर, बंसी निर्दोष, डा० शंकर रैणा, हृदय कौल भारती आदि कहानीकारों की रचनाओं पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। पण्डित मोतीलाल क्यमू की कई नाट्य रचनाओं में जो विस्थापन से पहले लिखी ग़ई हैं, भावी अनिष्ट के संकेत मिलते हैं । मेरा संकेत 'छ़ाय' (1977 ई०), तथा 'तोतॅ तॅ आऽनुँ (1984 ई०) नाट्य रचनाओं की ओर है। डा० अमर मालमूही की नाट्य रचनाएँ भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

5. कल्हण पण्डित के युग में अर्थात् 12वीं शताब्दी में कश्मीर में नब्बे प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कश्मीरी पण्डितों की थी और आज 21वीं शताब्दी में 3–4 प्रतिशत से अधिक नहीं और वह भी जलायवतन। केवल एक हज़ार वर्ष की कालावधि में यह कैसा अविश्वसनीय परिवर्तन हुआ है। इतिहास के इस विकृत सत्य की अवहेलना नहीं की जा सकती। हज़ारों वर्ष प्राचीन भव्य संस्कृति का लगभग संहार हो चुका है। अब केवल खंडहर शेष रह गये हैं। विस्थापन से पूर्व स्वातंत्र्योत्तर युग में रचनाकार इतिहास से अपरिचित नहीं था। अपने समकाल को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखकर वह भविष्य के प्रति शंकालु हो उठा था और भीतर की उसी अनिश्चितता को उन्होंने समयानुकूल वाणी प्रदान की है। वही तो पूर्वाभास है।

6. अन्त में केवल इतना निवेदन करके बात समाप्त कर दूँगा कि इस विषय पर लिखने का मैंने पहला प्रयास किया। हो सकता है कि कई लेखक बन्धुओं को लिखने की प्रेरणा मिले तब मैं समझूँ गा कि मेरा प्रयास सफल हुआ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विस्थापन के समय तक अर्थात् सन् 1947–48 से सन् 1989–90 ई० तक हमारे युवा–साहित्यकार का

पूरी तरह स्वप्न भंग हो चुका था । 43 वर्षों में वह निरन्तर अल्पसंख्यक की मानसिकता से पीडित, जीने की विवशता से क्षुब्ध भविष्य के प्रति शंकित था। मनोवैज्ञानिक स्तर पर इसे समझने की आवश्यकता है। मैं केवल संकेत कर रहा हूँ अर्थ ढ़ूँढना आप का काम है। बक़ौल धूमिल :—

"लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।"

15—04—2004

— 0 —

'कालवृक्ष की छाया में'

डॉ० अग्निशेखर

'सतीसर' मिथकीय कविता में समकालीन जीवन–सत्य

'कालवृक्ष की छाया में'* अग्निशेखर का नवीनतम हिन्दी कविताओं का संकलन 'सारांश' प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड–मयूर विहार, दिल्ली–91 से सन् 2002 ई० में प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व अग्निशेखर के दो काव्य संग्रह 'किसी भी समय' (1992 ई०) तथा 'मुझ से छीन ली गई हे मेरी नदी' (1996 ई०) पाठकों, आलोचकों और बुद्धिजीवियों के सम्मुख आ चुके हैं।

'सतीसर' मिथकीय कविता के अन्तर्गत 34 दृश्यचित्र एक पौराणिक कथा को नये सन्दर्भों के साथ जोड़ देते हैं। ज़ाहिर है कि आकार की दृष्टि से यह एक लम्बी कविता बन गई है लेकिन इसको सही अर्थों में एक लम्बी कविता कहा जाये – यह विचारणीय है ।

'सतीसर' पुराणाश्रित कथात्मक कविता के अतिरिक्त काव्य–संग्रह में 41 अन्य कविताएँ हैं।

आरम्भ में ही इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि अग्निशेखर अपनी मिट्टी से जुड़ा कवि है जो सैंकड़ों दिल्ली दरबारों को अपनी माटी की ख़ुशबू पर निछावर कर देता है। अग्निशेखर एक कवि ही नहीं है अपितु विस्थापित समाज का एक सशक्त युवा नेता और प्रतिनिधि है। एक क़ौम जो बीमार भारतीय राजनीति का शिकार बन

* 'गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार' से सम्मानित (वर्ष 2003)

कर चुपचाप ज़हर के घूँट पी रहा है और तिरंगा हाथ में थामे अपने कैम्प के तम्बू के सामने आँसुओं के अर्घ्य से उसे पूज रहा है।

नीलमतपुराण में वर्णित सतीसर की कथा, जलोद्‌भव का राक्षसी अस्तित्व, कश्यप द्वारा अपनी सन्तान सुरक्षा के उद्देश्य से प्रेरित होकर योजनाओं और युक्तियों द्वारा बारामुला के पास सतीसर से पानी बाहर निकालने का संकल्प, नाग वंशी सन्तानों की आबादकारी का लोभ, इतर जातियों (पिशाच, यक्ष, मानव) का अस्तित्व एवं परस्पर जाति संघर्ष, आर्यों का प्रवेश और देवताओं का बड़भैयापन मिथक अथवा अर्द्ध इतिहास के वे सूक्ष्म तन्तु हैं जिन्हें अग्निशेखर ने बड़ी कुशलता के साथ परस्पर जोड़ दिया है। मिथक समसामयिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में अपनी समस्त विकृतियों के साथ जीवित हो उठा। अग्निशेखर की इस विस्तृत कथात्मक कविता की यही ख़ूबी है कि इसमें हमारा भूत हमारे वर्तमान का आईनःदार बनकर इस कथन की सार्थकता सिद्ध करता है कि 'इतिहास अपने आपको दोहराता है'। देश की जर्जरित दमघोटू राजनीति ने इस उपजाऊ भूमि में इतने जलोदभवीय बीज डाल दिये हैं कि आज असंख्य रक्त पिपासु जलोद्‌भव खुले आम घूमते नज़र आते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन्हें हर तरह से सर्व सम्पन्न बनाने के हेतु 'हाथ मिलाओ' की नीति अपना कर रक्त के जाम पिलाये जाते हैं।

'सतीसर' कथात्मक कविता की एक विशेषता यह है कि 34 रंगीन दृश्य चित्र पाठक के मानस रूपी कम्प्यूटर स्क्रीन पर सिलसिलेवार 'की' बोर्ड का बटन दबाते ही मूर्त हो उठते हैं। पौराणिक कथा गौण हो जाती है और समसामयिक जीवन की विभीषिका मुखर । आकर्षण इस बात में है कि प्रत्येक दृश्य चित्र अपने आप में पूर्ण एवं स्वतन्त्र है। पाठक के ज़ेह्‌न को कुरेदता हुआ कुछ सोचने और समझने के लिये विवश करता है। वे पहले दृश्य चित्र में ही लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं :–

'इस बार सुनते हैं कवि से

व्यथा सतीसर की .... '[1]

देवताओं के क्या कहने ! उपजीवी, भोग विलासी, अजर–अमर रंगीन मिज़ाज, दूसरों की परोसी थाली में झट मुँह डालने वाले । तुरन्त लार टपकती है इनके मुँह से। मिथक के अनुसार :–

'विस्मित नेत्रों से देखा नागों ने
सती देश में
पर्वत लाँघ कर उतर रहे हैं देवता ....
समय के राजदूत !'[2]

आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व कश्मीर इतिहास का ध्यान कीजिए आप देखेंगे एक बलात् सांस्कृतिक आक्रमण और हमारे व्यक्तिगत जीवन में हठात् हस्ताक्षेप। 95 प्रतिशत से 4.5 प्रतिशत तक पहुँचने की नौबत। हमें कभी भी अपना जीवन जीने नहीं दिया गया। साज़िशी इन्द्र, हिंसक गरुड और महान कूटनीतिज्ञ लोलुप विष्णु सब बराबर हमारे व्यक्तिगत जीवन में अकारण हस्तक्षेप करते रहे :–

' कह दो इन्द्र से
कह दो गरुड़ से भी
भेज दो सन्देश विष्णु को भी
जीने दो नागों को सतीदेश में
अपना जीवन ।'[3]

नाग एक ऋग्वैदिक पर्वतीय आर्य जाति है जिन्हें अपने आपको सुसभ्य एवं श्रेष्ठ समझने वाले शेष आर्य असुरोपासक पर्वतीय आर्य कहते थे। देखा जाये तो यहीं पर मूल विवाद एवं वैमनस्य के बीज निहित हैं। श्रेष्ठ और निकृष्ट के इस आरम्भिक विवाद ने ही बढ़ते बढ़ते नाग समुदाय के सामाजिक जीवन में संकट खड़ा कर दिया ।[4]

संस्कृत के नग (पर्वत, पहाड़) शब्द से ही नाग शब्द का विकास हुआ है। ऋग्वैदिक आर्यों की एक शाखा पर्वतीय क्षेत्र में निवास करने के कारण ही नाग कहलाई।

उस युग में देव संस्कृति का वर्चस्व था ठीक उसी रूप में जैसे आजकल सांस्कृतिक साम्राज्यवाद सम्पूर्ण विश्व को अपने चपेट में लेने के लिये कृतसंकल्प दिखाई दे रहा है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु नागों के शान्तिमय जीवन में देवताओं ने विष घोल दिया। इसलिये सतीसर का मिथक देव संस्कृति के अप्रत्याशित संकट से जुड़ा है।[5] विष्णु अपनी विस्तारवादी नीतियों से प्रेरित होकर तथा तोड़–जोड़ के सिद्धान्त को अपनाकर कुछ नागों को भी अपने साथ मिला देते हैं।

देव संस्कृति का प्रचार और प्रभुसत्ता का फैलाव वस्तुतः उपनिवेशवाद का ही व्यापक स्तर पर विस्तार है। आज जिसे हम भूमण्डलीकरण या बाज़ारवाद कहते हैं उसके विषैले बीज देव चिन्तन अथवा विष्णु की आचार संहिता में देखने को मिलते हैं। विष्णु की आचार संहिता में यह शर्त महत्त्वपूर्ण है कि उनकी प्रभुसत्ता को स्वीकारना होगा और इसके बाद आप अपनी इच्छानुसार जीवन जी सकते हैं। केवल सत्ता–तन्त्र का वर्चस्व मानना होगा – नील इसी मजबूरी का शिकार हो जाता है । क्षेत्रीय स्वायत्तता को पाने के हेतु देवताओं की प्रभु सत्ता को स्वीकारना आवश्यक है।[6] नील को पहले पिशाचों का सहवास स्वीकारना पड़ा और फिर मिन्नत समाजत (अनुनय विनय) करने के बाद उसमें समयावधि निश्चित की गई पर उसमें एक शर्त और जोड़ दी गई कि मानवों का सहवास तो स्थायी तौर भुगतना होगा।[7] बेचारा नील देखिये कैसे सत्तातंत्र की स्वार्थी नीतियों को स्वीकारने के लिये विवश हो जाता है। केन्द्रीय प्रभु सत्ता का उल्लंघन करने का उसमें साहस नहीं; दंडित होना पड़ेगा क्योंकि उल्लंघन के लिए दंड का विधान है।[8] नागों के लिये स्थिति अत्यन्त दुखद है उन्हें वही करना होगा जो उनसे कहा जाता है या कहा जायेगा। यही कारण है कि राजा नील अपने पिता से पूछते हैं :–

'देवों के बीच
कब तक बचे रहेंगे हम ?'
पूछा नील ने एकान्त में

अपने पिता से
'हे कश्यप ऋषि !
क्या है अन्तर
जलोद्भव के आतंक
और देवताओं की सदाशयता में ?'[9]

o

'ये कैसी सहिष्णुता
समरसता यह कैसी
जिसके मूल में
अनिवार्य है मान कर चलना
विष्णु की इच्छा ।'

स्थानीय अस्मिता पर देव संस्कृति हावी है। इसे ही समीकरण की राजनीति (Politics of Assimilation) कहा जा सकता है। देवताओं के इस बड़भैयापन को तथा विष्णु की आचार संहिता में निहित सांस्कृतिक साम्रज्यवादी नीतियों को तनिक वर्तमान संदर्भ में देखिये तो ज्ञात होगा कि विश्व के महानतम शक्ति केन्द्र द्वारा सम्पूर्ण विश्व को अपने अधीन करने की भूख उत्तरोतर बढ़ती ही चली जा रही है। आज की महान शक्तियाँ विष्णु के समान ही सौम्य, शिष्ट, सुसभ्य, गम्भीर तथा आत्म–विश्वास से भरपूर तो हैं पर समस्त विश्व को टुकडों में बाँट कर तथा परस्पर एक दूसरे का विरोधी बना कर (शक्ति संतुलन की नीति अपना कर) सब को अपनी विस्तारवादी नीतियों से छल कर तथा सत्ता के अधीन लाकर अपने आलीशान दरबार में खड़ा कर देते हैं। इन्होंने विध्वंस की प्रक्रिया को इस हद तक बढ़ा दिया हे कि पृथ्वी और मानव अस्तित्व पर खतरे के बादल मंडराते हुए दिखाई देते रहे हैं। इनके बहुलतावादी (Pluralistic) मुखौटे के पीछे साम्राज्यवादी सत्ता के शक्ति सम्पन्न लोलुप अधिनायकों (Dictators, Supreme Power leaders) की कूटनीतिक पैंतरेबाज़ी देखने को मिलती है। सतीसर के

मिथक में राजनीतिक दाँव पेच और कूटनीतिक कलाबाज़ी (Acrobatics) दोनों पाठक का ध्यान आकर्षित करते हैं। अग्निशेखर के शब्दों में – " यह मिथक अलग अलग जातियों, जनजातियों, उनकी संस्कृतियों, धर्मों, भाषाओं के बीच सह–अस्तित्व और सहिष्णुता की ऊपरी–ऊपरी तौर से बात तो करता है, परन्तु उन जीवन मूल्यों के पीछे बहुलतावादी दृष्टि की खोट भी सामने लाकर रख देता है। इसकी मुखर अभिव्यक्ति कथा के उस मोड़ पर घटित होती है जब कश्यप ऋषि कश्मीर में नागों के साथ मानवों को भी बसाने की बात करते हैं और नाग इसका विरोध करते हैं।"[10]

तनिक राजा नील की स्थिति पर विचार करने के बाद यह बात स्पष्ट होती है कि विवशतापूर्ण जीवन जीना ही उसकी सबसे बड़ी ट्रेजिड़ी है। उसके चारों तरफ अन्याय है, शोषण है, सत्ता लोलुप शक्ति गट्टों (Power -Blocks) अर्थात् साम्राज्यवादी शक्तियों का बोलबाला है। अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिये वह सतत प्रयत्नशील दिखाई देता है।[11] वह यहाँ तक कह देते हैं कि 'हमें नहीं स्वीकार्य/तुम्हारे मानव' लेकिन महान देव सत्ता के आगे अन्त में वह घुटने टेक कर सर झुकाने पर विवश हो जाता है पर साथ ही यह कह कर वह आँखों में बचाता है अपने संकल्प और स्वप्न दोनों को :–

'मुझे नहीं स्वीकार्य
पराजय संस्कृति की,
माना है अजेय हैं देव फिलहाल
हम बचाएँ गे
अपने बीज
और विरोध अपना।' [12]

नील की दशा देख कर अनन्त (विष्णु) भी खिन्न हो उठते हैं और अधीरावस्था में तत्काल नागों के पक्ष में खड़े हो जाते हैं। नील की झुर्रियों में पड़ी समय की धूल को विष्णु ने पहचाना और कवि

भावाभिभूत होकर पुकार उठते हैं कि :–

नील की दशा में
देखा अनन्त ने एक ज़िन्दा संस्कृति का
समाधि – लेख ।'[13]

मिथक के स्वरूप पर विचार करने से यह बात स्पष्ट होती है कि इसका स्वरूप निर्वैयक्तिक है क्योंकि नील इतिहास प्रसिद्ध नाग जाति का प्रतिनिधि है। मिथक का स्वरूप पूर्ण रूपेण सामाजिक है। कई संस्कृतियों की परस्पर टकराहट और मेलमिलाप के बीच उभरते जटिल सम्बन्धों, विचारों, मान्यताओं एवं मनोभावों का उद्‌घाटन मिथक को गरिमा प्रदान करता है।

नागों का सामूहिक स्वप्न क्या है कि वे मानव, दानव, पिशाच और देव सबसे दूर रहकर अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखने के उद्देश्य से शुद्ध और मूल रूप में जातिगत मान्यताओं, विश्वासों, परम्पराओं और आचार–संहिता की सुरक्षा करते हुए शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकें। लेकिन सब से समृद्ध देव समुदाय उन्हें जीने नहीं देता। उनकी सांस्कृतिक पहचान को दूषित करने के लिए पिशाच और मानव संस्कृति का प्रवेश अपनी सत्ता के बल पर उनके देश में कराता है।[14]

तनिक मिथक के इस परिप्रेक्ष्य को वर्तमान सन्दर्भ में देखिये आतंकवादी लादीन को किसने बनाया। तालिबान को शस्त्रों से किसने लेस किया। हमारे पड़ोसी देश को करोड़ों करोड़ों डालर की सहायता कौन दे रहा है। भारत रूपी नागवंश का शक्ति सम्पन्न होना और अपनी सांस्कृतिक पहचान को बचाये रखना उन्हें एक आँख नहीं भाता अतः अलकाइदा विषवृक्ष की सैंकड़ों टहनियाँ भारत की सरज़मीन पर उग आईं।

सतीसर मिथक के द्वारा नागों के सामूहिक अवचेतन को स्वर

मिला है। नागों का सामूहिक स्वप्न आद्य बिम्बों और आद्य प्रतीकों के माध्यम से साकार हो उठा है। आशा, निराशा, संशय, आशंकायें, प्रश्नाकुल छटपटाहट तथा भीतरी संघर्ष सब साथ–साथ चल रहे हैं। सर्वत्र देव संस्कृति हावी है उसी प्रकार जैसे आजकल महाशक्ति केन्द्र विश्व राजनीति पर हावी हो रहा है और भंग कर रहा है विश्व शान्ति को अपनी विस्तारवादी नीतियों से ।[15]

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के अन्तर्गत भूमंडलीकरण (Globalization) बाज़ारवाद (market predominancy) एवं उपनिवेशवाद (colonialism) का मनमाने ढंग पर विस्तार होता है। विश्व बाज़ार (Global market) आज बहुलता को व्यापक स्तर पर नष्ट कर देता है, न केवल बहुलता को अपितु विविधता के सौन्दर्य को भी समाप्त कर देता है। विश्व के समस्त प्रमुख बाज़ारों पर हावी होकर वह उनके प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है। समकाल का उपनिवेशवादी षड़यन्त्र ही देव जाति का गणित था। विष्णु एक मंझे हुए कूटनीतिज्ञ हैं राजनीति के शतरंज के अनुभवी खिलाड़ी। एक एक चाल पूर्व नियोजित और निर्धारित नीतियों के अनुसार चलता है। मुख मंडल पर मधु मुस्कान, सत्ता का दम्भ और जातीय अस्मिता को और अधिक पुष्ट करने का संकल्प । नील तो समकाल के किसी स्वाभिमानी जाति–नेता का प्रतीक है। उसका स्वप्न विस्तारवाद का नहीं। वह कहीं भी अपनी सत्ता का विस्तार कर उपनिवेशों को आबाद नहीं करना चाहता। वह केवल अपनी जाति के हेतु सम्मान पूर्वक जीवन जीने की स्वतन्त्रता चाहता है। वह जनवादी व्यवस्था का पोषक शान्तिमय जीवन जीने का इच्छुक है। लेकिन देव संस्कृति का दबदबा देखिये अपनी विस्तारवादी नीतियों से प्रेरित होकर न केवल नागों को पिशाचों के साथ जीने के लिये विवश करते हैं अपितु जब नील अनुनय विनय के साथ सर झुका कर सत्ता को स्वीकारते हुए न्याय माँगता है तो मानव संस्कृति का प्रवेश करा कर नागों की गर्दन पर दुधारी (Double edged) तलवार लटका देते हैं।

कल तालिबान और लादीन आपके मित्र थे और यही दुधारी तलवार लटक रही थी भारत पर। आज तालिबान और लादीन आपके मित्र नहीं हैं। लटकती तलवार की पैनी धार कुन्द पड़ गई। अग्निशेखर के विचारानुसार नाग जाति के देवी देवताओं को भी नहीं बख़्शा जाता है, उन्हें भी अपने भीतर समाहित करने का प्रयास आर्य संस्कृति के ध्वज–वाहक करते हैं।[16]

समकालीन सन्दर्भों पर विचार करते हुए हम निस्संकोच कह सकते हैं कि इस्लामी आतंकवाद ने जलोदभवी सत्ता को फिर से शक्ति सम्पन्न बना दिया है और देश निष्कासित कश्मीरी पण्डित जलोद्भवी आतंक से पीड़ित वही यातना सहने के लिये विवश हैं जो नागों ने देव निर्णय को शिरोधार्य करते समय सहन की थी।

सतीसर मिथक प्रादेशिक आतंकवाद से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद तक तीन मरहलों से गुज़रता है।

अ) जलोद्भवी विनाश – प्रादेशिक स्तर पर आतंकवाद

आ) जातियों का परस्पर – राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद
सत्ता संघर्ष

इ) भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद तथा उपनिवेशवाद (सत्तालोलुप महाशक्ति की शतरंजी चाल) – अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद

देखा जाये अब सवाल केवल कश्मीर और कश्मीरी पण्डितों का नहीं है। उस जलोद्भव का आज नहीं तो कल अवश्य खातिमा होगा। हाँ, चार लाख कश्मीरी पण्डित उसकी भेंट चढ़ चुके हैं और राष्ट्रीय अस्मिता को बचाये रखने के लिये यह कोई छोटी कुर्बानी नहीं है।[17]

आज सवाल राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे आतंकवाद से क्षत–विक्षत राष्ट्रीय अस्मिता का है। लोकतन्त्र का महान शक्तिपीठ भी इस ज़द में आ चुका है। माफिया सरग़ना दाऊद इब्राहीम ने मुम्बई में हाहाकार

मचा दिया और गान्धी नगर (गुजरात) के अक्षरधाम मन्दिर में देवस्थल भी लहूलुहान हो चुका है। ग़रज़ सम्पूर्ण राष्ट्र का अस्तित्व ही आज़ खतरे में पड़ गया है। केवल ईश वन्दना करने से ही बात नहीं बनेगी। महमूद गज़नवी ने जब सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण किया तो पाँच सौ ब्राह्मण मन्दिर परिसर के भीतर सत्संग ही करते रह गये । इतिहास को झुठलाया नहीं जा सकता।[18]

राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर निकल कर आज आतंकवाद को यदि अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो कई गाँठे स्वयमेव खुल जाती हैं कश्मीरी भाषा में एक चर्चित कहावत है – 'अनिम सोय, वॅवुम सोय लजिम सोय पार्नुसुई '। (मैं कंटीले घास की झड़ी लाया, बो दी और आज उसी की स्पर्श पीड़ा भुगत रहा हूँ।)

विश्व व्यापार केन्द्र 9/11 के जलोद्भवी नरसंहार ने इनसानी सोच की जड़े ही हिला के रख दी हैं। आत्माभिमानी राष्ट्र जो यह दावा कर रहा था कि विश्व में कहीं भी पता तक हिले तो उन्हें जानकारी प्राप्त होती है, मौत के इस यमदूत को तब तक पहचान न सके जब तक ट्रेड सेन्टर देखते ही देखते कुछ क्षणों में ही मलबे (Rubbles, Debris) के ढ़ेर में तब्दील हो गया। इस प्रकार आज सारा विश्व आतंक की आशंका का शिकार हो गया है।

उत्तर आधुनिक काल की अनिश्चितता और सम्भावना आज विश्वचिन्तन के आगे एक साथ कई प्रश्नचिह्न लगा देती है। अतः आतंकवाद के व्यापक परिवेश के साथ जब सतीसर के मिथक को जोड़ देते हैं तो कथांश समकाल के साथ जुड़ कर असंख्य समानताओं को रेखांकित करते हुए नागों के मुँह से कहलवाता है :–

कहा नागों ने
नील से –
' हम लडें गे
अन्तिम सांस तक

जलोद्भव से ।' [19]

उत्तर आधुनिक काल का एक प्रमुख लक्षण है – सर्वत्रव्याप्त अनिश्चितता और कुछ न कुछ घट जाने की सम्भावना के प्रति औत्सुक्य । समकालीन सृजनात्मक साहित्य में ये दोनों तत्त्व सर्जन को एक नई दिशा प्रदान करते हैं। अनिश्चितता और सम्भावनाओं के बीच रचनाकार रचना के माध्यम से अपने भीतरी संकट को वाणी प्रदान करता है। राजा नील भी वस्तु स्थिति की गम्भीरता को भली भाँति समझता है। वह जानता है कि विष्णु की आचार संहिता को स्वीकारने की मजबूरी है नहीं तो अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। निकट भविष्य में क्या होगा ? सब कुछ अनिश्चित है अतः उसका मानस आशंकाओं से घिर जाता है। यह वस्तुतः एक संकट ग्रस्त जीवन जीने की स्वाभाविक परिणति है।

सतीसर में जलोद्भव की उत्पत्ति का किस्सा रोचक अन्दाज़ में पेश करते हुए कवि उसके आगमन से उत्पन्न अशान्ति और मृत्युभय मिश्रिम अनिश्चितता को वाणी प्रदान करते हैं । दो संस्कृतियों की टकराहट अकस्मात् रक्तपात और हिंसा का कारण बन जाती है :–

' और हुआ उत्पन्न
लहरों के बीच जलोद्भव
उसकी किलकारियों से
व्यथित हुई नागिनें
नील की पत्नियाँ
जो विह्वल थीं
इन्द्र के हाथों हताहत
अपने पुत्रों को देखकर ।' [20]

विनता/वनिता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र गरुड पक्षीराज और विष्णु के वाहन माने जाते हैं। कद्रू के गर्भ से उत्पन्न पुत्र नाग कहलाये। कद्रू और वनिता के सौतिया डाह ने दोनों वंशों को एक

दूसरे का शत्रु बना दिया था। गरुड का पलड़ा भारी था। साज़िशी इन्द्र इस स्थिति का लाभ उठा कर गरुड को उकसाते हैं और वासनान्ध गरुड की आँखों में छलक उठता है – सोमरस

सम्मानित हुए गरुड
भीगा सोमरस से इन्द्रलोक
अपहृत नाग कन्याओं की
बज उठी पायलें ।'[21]

आतंकी जलोद्भव आज पूरे भारत राष्ट्र की सत्ता को ही खतरे में डाल रहा है। कश्मीर तो उसकी प्रयोगशाला है और सतीसर मूल निवासी आज अकारण उसकी विनाश लीला की चपेट में आ चुके हैं। देखा जाये तो बटन दबाते ही बिजली दमक उठती है। इसका स्विच–बोर्ड़ कहीं और है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मगरमच्छ के आँसू बहाने वाले चुपचाप बटन दबा देते हैं और साथ ही समाचार पत्रों के लिय आतंक़ के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव भी प्रकाशित करवाते हैं। यह जलोद्भवी लीला कँपा देती है दोस्त :–

' अट्टहास जलोद्भव का ....
कि हिल उठी धरती
ध्वस्त हुए
नागों के नगर ।' [22]

देखा गया है के राक्षसों ने देवताओं की समय–समय पर खूब ख़बर ली है। ललक़ार के साथ नकारा है उनके अस्तित्व को और अपनी पैशाची प्रवृत्ति के कारण अपने आपको नियंत्रित नहीं रख सके हैं फलतः पृथ्वी काँप उठी है राक्षसों की राक्षसी लीलाओं से। रावण के रावणत्व से इन्द्रपुरी के निवासी थर–थर काँप उठते थे। देवताओं के मुखियों का चाहे वे सुरपित हों या लक्ष्मीपति चिन्तित होना स्वाभाविक था। यहाँ फूल मारने की बात नहीं बाण चलाने की आवश्यकता है। अहिंसा का तार–तार हुआ चोला उतार कर आततायी को सदा के

लिये कुचल देने की ज़रूरत है। सुरमई आँखों में रक्तिम आक्रोश उबल पड़े तब कहीं 21वीं शताब्दी का जलोद्भव जल समाधिस्थ होगा। नहीं तो कवि के शब्दों में :–

'अमर है जलोद्भव
मार नहीं सकता उसे कोई
सीतसर के जल में
निर्भय है
भीतर बाहर
चिन्तित है विष्णु ।'[23]

मुँह ढके या जगर पहने निक़ाब पोशी जलोद्भव ने हाहाकार मचा रखा है और रोज़ उसके द्वारा चलाये गये गुप्त अभियानों से हर तरह की व्यवस्था चरमरा उठी है। पुलिस महानिदेशक के चेम्बर (कक्ष) में, जब कि वे वहीं मौजूद एक अहम मीटिंग में व्यस्त थे अकस्मात् बम विस्फोट हुआ। धमाका इतना भीषण था कि मीलों दूर उसकी आवाज़ फ़ज़ा में गूँज उठी। सरकारी आदेश बेमानी हो गये । आदेश मिलते थे जलोद्भव के कार्यालय से। बस सब देखते ही देखते जलोद्भव के ग़ुलाम बन गये और जिस किसी ने भी तनिक सर उठाने क कोशिश की तुरन्त अबदी नींद में सुला दिया गया। वस्तुस्थिति में निहित यथार्थ की ओर संकेत करते हुए कवि लिखते हैं :–

(जलोद्भव) 'उसके चलने से
चलता है चन्द्रमा भी आकाश में
ब्रह्माण्ड में नक्षत्र भी
अधीन हैं उसके
वह स्रष्टा है
है पालनहार भी
वही है संहार की महाशक्ति
उत्साहित हैं दैत्य

नहीं रहा सतीसर अब
नागों का देश ।'[24]

बुतशिकनी दौर का बीभत्स यथार्थ 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में पुनः सक्रिय हो उठा और धू धू कर जलने लगे – हमारी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के साक्ष्य और ध्वस्त हुई सर्जनात्मक प्रतिभा के आधार स्तम्भ । भारत के सांस्कृतिक इतिहास में पर–संस्कृति के प्रवेश का यही तो अंजाम है। दो सौ वर्षों से भी अधिक समय तक पश्चिम निवासी श्वेत चमड़ी आक़ाओं ने तो हमारे साथ यही अन्याय किया और उनसे पूर्व स्थिति कुछ भिन्न नहीं थी। युगान्तर में इतिहास अपने आपको दोहराता है।

भाई ! जलोद्भव अपनी संहार लीला में मग्न रहा और शान्ति प्रिय देवता जन नागों के विनाश पर मन ही मन मुदित होकर अपनी नपुंसक मुस्कान के साथ निजी विलास में रत रहे। नागों का संकल्प वन्दनीय है। उन्होंने प्राण दिये लेकिन जलोद्भव की प्रभुसत्ता को मानने से साफ़ इन्कार किया:–

'जलाए नागों के ग्रन्थ
जलोद्भव ने
फेंकी झील में पाण्डुलिपियाँ
धुल गया इतिहास से
पन्ना–पन्ना
खुश हुए इन्द्र
मुस्कुराए विष्णु
देखा गरुड ने
धूल में पड़े हैं
पूजा स्थलों के कलश

भाग गये कुछ वनों में
वेश बदल कर

कुछ ने दिए प्राण
पर स्वीकार नहीं की
जलोद्भव की संप्रभुता ।'[25]

सन् 1989–90 ई० में चार लाख कश्मीर वासियों का देश त्याग तो इसी जलोद्भवी नर–संहार का परिणाम था। देवता जन अंग–रक्षकों की भीड़ के साथ सरकारी पेट्रोल को पानी की तरह बहाते भागम–भाग करते दिखाई दिये। नागों के राजा नील ने समय की चाल को सही समझा और वक़्त पर फ़ैसला लेकर अपनी प्रजा के साथ जन्मभूमि से विदा ली। अपने ही देश में शरणार्थी बन कर रहने की पीड़ा, मातृभूमि के बिछोह का ग़म और मारे गये परिजनों का मातम – यही तो पूंजी थी नागों के साथ प्रस्थान के समय :–

प्राणों की रक्षा !
यही है धर्म विकराल समय में
कहा नील ने
और किया देश से पलायन
नागों के साथ
....
....
....
'समय क्रूर है
संबल है धैर्य
विवेक है पथ
पर दुर्गम है
चरैवेति ......
चरैवेति ...... ।'
कहा नील नाग ने
अकाल मृत्यु के मुँह जाते

नागों से ।'[26]

राजा नील के कथन में इतिहास मुखर हो उठा है । देश–विभाजन के समय 58 वर्ष पूर्व जो असावधानी भरती गई आज उसी का परिणाम भुगतने के लिये हम विवश हैं। कवि इतिहास की इस सच्चाई को समकाल के यथार्थ के समानान्तर खड़ा करके प्रबुद्धजनों की हिमालयायी भूल पर मातम करते हुए लिखते हैं :–

'यह अन्याय है कल्पनातीत
जो हुआ हमारे साथ।' [27]

राजा नील अपनी समस्त भयाकुल प्रजा के साथ पर्वतीय सीमायें लांघ कर शरणार्थी शिविर में पहुँचे। कहाँ जन्मभूमि का स्वर्गिक आनन्द, ऐश्वर्य, सुख शान्ति, मोत'दिल (सम शीतोष्ण) जलवायु और कहाँ शिविर में तपते सूर्य की दहन। 40^0 सेलशस से 47^0 सेलशस गरमी में जीवन जीना – वह भी तपती रेत में खुली सड़क पर फटे तम्बु की आड़ में । हे राम ! देखते ही देखते यह क्या से क्या हो गया। नाग के शीश पर चिन्ता का बोझ, झुकी रीढ़ और आँखों में छाया, अवसाद, मृत्युंजयी देवताओं के अमृत कलश से अधिक मूल्यवान है यहाँ पानी का एक लोटा, जल से भरा एक कलसा और किसी पेड की घनी छाँव। राजधानी के नाट्य गृह में अभिनेताओं की अवसादग्रस्त मुद्रायें, लम्बे–लम्बे भाषण, झूठे आश्वासन, अर्थहीन धमकियाँ व्यर्थ की दौड़–धूप और एलकत्रानिक माध्यमों का दुरुपयोग, प्लास्टिक बालटियों, कपों, प्लेटों और बच्चों के लिए सस्ती टाफियों का मुफ़्त वितरण – ' दूरदर्शन के लिए भर पूर मसाला और टें–टें फिस। कवि व्यथा के पारावार में डूबते उतरते खीझ भरे आक्रोश के साथ भीतरी वेदना को शब्दबद्ध करते हुए लिखते हैं :–

– ' आकाश से बरस रहा है
धूप का तेज़ाब
और मौन है पसरा हुआ

चारो तरफ
किससे कहें देव – भूमि में यहाँ
रोयें कहाँ जाकर
यह दुखड़ा
जो दिखते हैं निर्दोष
वे ही दोषी हैं
और यह हंसी हमारे रोने की
नई विधा है।' [28]

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अग्निशेखर अपने जड़ों की भूमि 'सतीसर' के साथ गहराई में जुड़ा है। वह किसी भी तरह उससे अलग होना नहीं चाहता। उसे विश्वास है कि अलग होते ही अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। खो जायेगा उसका सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक वैशिष्ट्य, देवभूमि के अपार जल समूह में । वह अपनी पहचान को बनाये रखने के लिये कृत संकल्प है। वह समर्पित है अपनी जन्म भूमि के प्रति जो प्रवाहित है उसके रक्त के साथ उसकी नस नस में। राजा नील के प्रजा जन सुरक्षित आर्य भूमि में पहुँचे पर वे अपनी मातृभूमि, जननी जन्म–भूमि के बिछोह में व्याकुल और विह्वल हैं। यह स्थिति करुणाजनक भी है और ह्रदय विदारक भी। कवि के शब्दों में :–

' सतीसर है
जड़ों की भूमि हमारी
रक्त में प्रवाहित ...... '
समझाते हैं
नागों को नील –
' कैसे जी सकें गे
बिना उसके हम यहाँ
धूप में निठुर ?' [29]

ऋषि कश्यप का दृष्टिकोण जीवन के प्रति स्वीकारात्मक है,

नकारात्मक नहीं। वे अपने पुत्र और उसके प्रजा जनों के मानस में नव–आशाओं का अंकुर बो देते हैं। वे उन्हें आश्वासन दिलाते हैं कि यह बर्फ़ अवश्य पिघल जायेगी । लेकिन वर्तमान में स्थिति ठीक इसके विपरीत है। जलोद्भवी आतंक से विष्णु का आसन भी डगमगा रहा है। समस्या प्रदेश से निकल कर राष्ट्र तक और राष्ट्र से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को छूती हुई विश्व के सब से अधिक शक्तिशाली राष्ट्रों की नींद भी हराम कर रही है। 13/9 विश्व व्यापार केन्द्र न्यूयार्क, चेचनयाई आतंकी रूस के सिनेमा घर में और तालबानी सम्पूर्ण विश्व में संहार के लिये तुले हुए हैं। सन्तोष केवल इस बात का है कि जलोद्भवी आतंक से तथाकथित देवताओं की चमड़ी भी जल रही है। जलोद्भव की दानवी लीलाओं से त्रिदेव भी त्रस्त हो उठे हैं। ऐसा होना स्वाभाविक था। सर्वत्र आग लगी है और कहाँ तक राजसी तख़्त को बचाया जा सकता। आतंकियों के जलोद्भवी व्यवहार से प्रकृति भी त्रस्त हो उठी है।

राजा नील और उसकी प्रजा तक ही बात सीमित नहीं रही यह तो बड़ते–बड़ते गुजरात के अक्षरधाम तक पहुँच गई। हज़ारों हज़ारों वर्ष पहले कमज़ोर देवताओं को रावण ने भी ख़ूब छकाया था और आज 20वीं–21वीं शताब्दी में तालबानी ज़्वार की लहरें उन्हें समूल उखाड़ फेंकने के लिए दत्तचित दिखाई दे रही हैं। बुद्ध को सहना पड़ा अंग भंग तोपों की गड़ गड़ाहट में और विश्व में फैले बौद्ध उसी प्रकार 'बुद्धं शरणम् गच्छामि' का जप जपते रहे जिस प्रकार महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय सोमनाथ मन्दिर के परिसर में ब्राह्मण–गण ईश–वन्दना करते रह गये। परिणाम भुगतना पड़ा भगवान सोमनाथ को उसी प्रकार जिस प्रकार बामयान में बुद्ध देव को सहना पड़ा। कवि के शब्दों में :–

' छकाया देवताओं को
जलोद्भव ने
वर्षों तक

रक्त की छींटों से हो गए
मेघ लहू लुहान। ' [30]

आज विश्वास और सन्देह समरूप हो गये। हत्या और करुणा में भेद मिट गया। लेकिन ईश्वरीय लीला भी विचित्र है। पौराणिक कथा के अनुसार सतीसर के भीतर ही जलोद्भव को समाप्त किया गया और कश्यप–मर (कश्मीर) का वजूद विश्व के मान–चित्र पर साकार हो उठा। यह वह समय है जब आर्यों का प्रवेश घाटी में हुआ। पिशाच और यक्षों ने पर्वतों में शरण ली और शक्तिशाली आक्रान्ता ने अपने पैर जमा लिये । इस प्रकार नाग, नागेतर जातियों के साथ रहने को विवश हुए। इन्होंने विरोध किया था दंडित हुए और मिला पिशाचों का सहवास और इस प्रकर इतिहास के करवट बदलने के साथ ही नाग एक बार फिर यातना ग्रस्त हो उठे। राजा नील चिन्तित हैं कि आखिर क्या होगा। यह वही स्थिति है जो आज विस्थापित शिविरों में एक कमरा काल कोठरी आवास, जिसे मैं 'इग्लो' कहता हूँ, में रहते हुए विवश विस्थापित की है। आगे खाई पीछे पहाड़ ज़ोर से बोलो – भारत देश महान। वह राजा नील की तरह चिन्ता मग्न मन ही मन विचारों की दुनिया में खो जाता है :–

'झेली यातनाएँ इतनी हमने
कितना संघर्ष किया
पिए निर्वासन के घूँट
हुए सहस्रों जन
काल – कवलित इस बीच
....
....
....
चिन्तित हैं नील ।' [30 अ]

चतुर देव समय की चाल पहचान कर मात्र अपने ऐश्वर्यमय

जीवन निवार्ह की चिन्ता करते हुए आँखों में गिलसरीन डाल कर आँसू बहाते हैं। वेदों का कवि ब्रह्मा स्वयं यह स्वीकार करता है कि :–

'जानता हूँ तुम्हारी पीड़ा
फिर भी हूँ मौन
जैसे पाषाण ' [30 ब]

और विष्णु अपनी जर्जरित काया पर आँसू बहाते हुए तथा लक्ष्मी को इकटक निहारते राजा नील से कहते हैं :–

' हे नील !
जानता हूँ आगमन पिशाचों का
है तुम्हारी चिन्ता
पर इस कोहरे में
मैं नहीं देखता फिलहाल
तुम्हारी पीड़ा का अन्त .....
बचालो कैसे भी तुम
नागों का वंश ।'[31]

लेकिन सही है कवि का चिन्तन कि 'काल का प्रवाह है अजस्र' । आज हल्की आशा के साथ घनी आशंका सर्वत्र व्याप्त है और सब कुछ अनिश्चित है। इस अनिश्चितता के वातावरण में कभी–कभी साँस लेना भी दूभर हो जाता है। दम घुटता है, ज़बान सूख जाती है और आँखों के सामने घुप अन्धेरा छा जाता है। बस विस्थापित बन्धु की आज यही दशा है भला राजनीति में असफल खिलाड़ी उसे क्या दिशा दिखायें गे। काल प्रवाह में उसे स्वयं तलाशनी होगी अपनी दिशा और आज वह 'ऋषि वॉर' के संकल्प के साथ उसी दिशा में आगे बढ़ने का मन बना रहा है। आज उसे चिन्ता है अपने मूल को सुरक्षित रखने की क्योंकि यही मूल उसके भविष्य को बचाये रखेंगे । विस्थापित किसी भी अवस्था में अपनी पहचान को बनाये रखना चाहते हैं, कश्मीरियत को ज़िन्दा रखना चाहते हैं । अपनी पहचान खो कर जीवित रहना

व्यर्थ है। अस्तित्व की रक्षा के हेतु अस्थायी रूप से देश त्याग समय की सब से बड़ी आवश्यकता थी लेकिन बेघर होकर अथवा अपनी पहचान खो कर दूसरों का मुँह तकते रहना भी बुद्धिमानी नहीं। शक्ति सम्पन्न को विस्थापित का जीवित रहना मंजूर नहीं और हमें उसकी प्रभुसत्ता मान्य नहीं। समस्या का निदान केवल 'ऋषि वॉर' है जिसको पाने के हेतु विस्थापित समाज न केवल दृढ़ संकल्प है अपितु मर मिटने को कटिबद्ध । इसीलिए राजा नील एकान्त में अपने पिता कश्यप मुनि से सहजभाव में पूरी उत्सुकता के साथ पूछ बैठते हैं कि :—

' पूछा नील ने एकान्त में
अपने पिता से
' हे कश्यप ऋषि !
क्या है अन्तर
जलोद्भव के आतंक
और देवताओं की सदाशयता में
....
....
....
ये कैसी सहिष्णुता
समरता यह कैसी
जिस के मूल में
अनिवार्य है मानकर चलना
विष्णु की इच्छा ।'[32]

वेदनाविह्वल कवि जाति–संहार को अपनी आँखों से देख रहा है । विश्व की एक खुर्दबीनी अल्पसंख्यक जाति (Microscopic minotiry) अन्तराष्ट्रीय राजनीति की भेंट चढ़ाई जा रही है। अपने ही घर के भीतर बेघर हो जाने की विवशता राजधानी का सुख चैन लूटने वाले क्या समझें ! एक जाति पिछले 16 वर्षों से अपने अस्तित्व की तलाश में भटक रही है। उसकी परम्पराएँ, मान्यताएँ, विश्वास,

रीति–रिवाज, भाषा एवं बोलियाँ, साहित्य, सदियों से संचित ज्ञान राशि, जन्म–भूमि का आनन्दोल्लास, लोक जीवन का आकर्षण यहाँ तक कि संस्कृति और संस्कार सब धीरे–धीरे अपनी पहचान खोने लगे हैं और देवता महाशक्ति केन्द्र के सम्मुख हथियार डाल कर 'व्यॅलकम सर' की भूमिका निबाह रहे हैं। यदि वे कृपापूर्वक मुसकुरायें तो देवताओं के मुख पर मुसकान खिल उठती है और यदि वे गरजे तो देवताओं का चेहरा मलिन पड़ जता है। अपनी असहाय अवस्था पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं :–

' हाँ ! मेरी नियति
और ये वेदनाएँ मेरी
ओ, मेरी परछाई – सी असहायता ....
देख रहा हूँ
नागों के प्रतीक
हो रहे स्मृति शेष
खो रहीं
परम्पराएँ जीवन्त ।' [33]

वह अपना निर्णय सुनाने में भी आनाकानी नहीं करता क्योंकि 16 वर्षों से वस्तुस्थिति का अवलोकन करने के बाद उसे विश्वास हो गया है कि कट कर रहने से बेहतर है बट कर रहें, कम से कम अपनी सीमाओं का बोध तो होगा। अस्तित्व मिटा कर जीना अपनी पहचान खो देने के बराबर है :–

'मुझे नहीं स्वकीर्य
पराजय संस्कृति की
माना अजेय हैं देव फिलहाल
हम बचाएँ गे
अपने बीज
और विरोध अपना।' [34]

'सतीसर' शीर्षक के अन्तर्गत अन्तिम कविता में चार दृश्य–बन्ध नील के हृदयाकाश में उभरे सुनहले भविष्य के चार आकर्षक फ्लैश क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं । मैं समझता हूँ कि कवि को खोने में नहीं अपितु जीने में विश्वास है। निराशा के भँवर में, सपनों में ही सही, आशा की डोर उस के हाथ लग जाती है और हिचकोले खाते हुए भी वह किनारे की ओर पूरी उम्मीद के साथ क़दम बढ़ाता है :–

'सपने में देखा नील ने
लौट गए हैं देवता वापस
पर्वतों के उस पार
भर गई
देवदारों के घने बनों तक
खाली सतीसर में चान्दनी झिलमिल
....
....
....
अब नहीं पिशाच यहाँ
नहीं है देव भी ।' [35]

लेकिन कभी–कभी ज़िन्दगी का यथार्थ अकस्मात् इन स्वप्न–चित्रों से टकरा कर इन्हें चूर चूर कर देता है। चाहे एक क्षण के लिये भी हो, यह स्थिति निहायत त्रासद और जान लेवा होती है। वस्तुतः यथार्थ की आँच से ही स्वप्नों का तथाकथित ठोसाकार गल कर विलुप्त हो जाता है। कभी–कभी कवि मानस कई प्रकार की शंकाओं से घिर जाता है। एक सर्वसामान्य मानव के लिये ऐसा होना स्वाभाविक है। आज के राजनीतिक माहौल में और कूटनीतिक बन्दरबाँट में कुछ भी असम्भव नहीं। नील स्वप्नों के दर्पण से बाहर निकल कर स्वयं अपने आपसे पूछ बैठता है :–

'ये नाग तुम्हारे हैं

क्या विश्वास के योग्य ....
क्या नहीं ये छोड़ रहे हैं
पहचान के केंचुल
जाएँ गे तुम्हें छोड़ कर
विष्णु के सम्मोहन में ।' [36]

लेकिन इन सम्भावनाओं के होते हुए भी वह 'जीवन के स्वप्न' को गले लगाता है और भूत के मिथक से वर्तमान को जोड़ कर भविष्य के प्रति आशावान हो उठता है। वह जीना चाहता है हर क्षण जिजीविषा (The life instinct, will to live) के साथ । लेकिन पिशाचों और देवताओं के दबदबे के नीचे सर कुचलवा कर जीना उसे मंजूर नहीं। आज वह अपने ही देश में रिफ्यूजी (शरणार्थी) बन कर जी रहा है सम्भव है कल उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रिफ्यूजी बनकर जीने की विवशता सहनी पड़े लेकिन अपनी अन्तर्रात्मा के साथ अन्याय करना उसे मंजूर नहीं। ज़िन्दगी के प्रति उसका सोच पुख्ता है उसका विरोध सकारात्मक है, नकारात्मक नहीं :–

'मेरे विरोध में
छिपा है
जीवन का स्वप्न ।' [37]

इस प्रकार लघु आकार की चौंतीस कविताओं के द्वारा कवि मिथकीय ताने बाने में अपने वर्तमान के यथार्थ को पिरो देता है। नीलमत पुराण में वर्णित अनुश्रुत (legend) ने 21वीं शताब्दी के सूचना प्राद्योगिकी एवं कम्प्यूटर युग में भी अपनी अर्थवत्ता खो नहीं दी है। हज़ारों वर्ष व्यतीत होने के बाद भी आज यह पौराणिक कथा हमें अपने भूत के साथ जोड़ते हुए वर्तमान को आवश्यकतानुसार बदलने की प्रेरणा देती है। हर युग में जलोद्भव रूप बदलते हुए ज़ाहिर हुआ है। हूण सरदार मिहिर कुल, सुलतान बुतशिकन और उपनिवेशी राजसत्ता तो जलोद्भवी रूप ही हैं जो 21वीं शताब्दी में, तालबानी, लादीनी, जहादी और आतंकी बनकर विश्व शान्ति को चर रहे हैं।

देवताओं का बहुत ज़्यादा कापुरुषी (कुत्सित) देवतापन उतना ही अखरता है जितना पिशाचों का पैशाचिक नृत्य। सन् 1947 ई० में हम इनके कुकृत्यों से पर्याप्त पीड़ित हुए। पिछले 16 वर्षों से इनका दबदबा उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जा रहा है और हम शान्तिपाठ ही करते रह गये। ममताज़ महल की आरामगाह के पास अतिथि सत्कार में जुट गए। वस्तुस्थिति को 'लीजंड' के आवरण में बयान करते समय कवि ने अपने कवि कर्म का पूरा निर्वाह किया है। यहाँ सृजन का सौन्दर्य है और अनुभूति की तिलमिलाहट। प्रत्येक लघु रचना में एक गहनानुभूति शब्दों के साँचे में फिट होकर रूपाकार ग्रहण करती है और इतिहास की एक न एक बर्बर सच्चाई को उसके सही परिप्रेक्ष्य में उजागर करती है।

जिसने तूत के अंगारों की झुलसन को महसूस न किया हो, जिसने नकाबपोश जलोद्भव का साक्षात्कार न किया हो, जो नंगे पाँव सब कुछ पीछे छोड़ कर देश त्याग करने के लिए विवश न हुआ हो, जिसने शरणार्थी बनकर खुले आसमान के नीचे सूर्य की तपन को न सहा हो, जिस पर हाकिम की मार न पड़ी हो, जिसने नेता की नेतागिरी के चाबुक पीठ पर न सहे हों, जो जेठ की दुपहरी में हाकिम का फरमान सुनने के लिये घण्टों पंक्ति बद्ध खड़ा न रहा हो, जो बिना कफ़न पहनाये अपने जाति बन्धुओं के अन्तिम सामूहिक संस्कार में शरीक न हुआ हो भला वह शब्दों के साथ खिलवाड़ करना चाहे तो कर सकता है पर विस्थापन के गहन पीड़ा बोध को आत्मसात किये बिना उसकी कविता इतिहास के पन्नों में खो जायेगी। इतिहास के इस कड़वे यथार्थ को खुद ज़हर पीकर मिथक के साँचे में प्रस्तुत करना सम्भवतः उनकी सीमा और शक्ति के बाहर होगा।

21 फरवरी, 2003 ई०

* * *

सन्दर्भ तालिका

1. 'कालवृक्ष की छाया में ' – अग्निशेखर पृ० 13
2. – वही – पृ० 15
3. – वही– पृ० 17
4. 'असभ्य हैं नाग शिश्नोपासक
अयाज्ञिक हैं
अनार्य हैं ।'
–'कालवृक्ष की छाया में'– अग्निशेखर पृ० 21
5. 'कश्यप ऋषि यहाँ पुनर्वास की दृष्टि से नागों के साथ मनु के वंशज मानवों को भी स्थायी तौर पर बसाने का प्रस्ताव रखते हैं, जिसका नाग विरोध करते हैं । उनके लिये यह देवसंस्कृति का अप्रत्याशित संकट है।'
'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर –' कोशुर समाचार' दिसम्बर 1998 ई०–पृ077
6. 'विकल्पों के धुंधलके में नाग अराजक स्थिति में पड़कर देवताओं की सर्वसत्तावादी केन्द्रीय संस्कृति के सामने घुटने टेक देते हैं। .. क्षेत्रीय स्वायत्तता तो दी, वहीं दूसरी ओर अपनी प्रभु–सत्ता भी मनवाई। '
'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर –' कोशुर समाचार' दिसम्बर 1998 ई० पृ0–78
7. – 'हे जलोद्भव के हंता
हे नागों के मुक्ति दाता।
आप बसाएँ
यहाँ मनु के वंशज
नागों के साथ।'
'कालवृक्ष की छाया में ' पृ०–57
8. 'तस्याज्ञां विफलां कुर्वन् मम् हस्ताद् विनशति ।'
9. 'कालवृक्ष की छाया में' –अग्निशेखर पृ० 69
10. 'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर–'कोशुर समाचार' दिसम्बर 1998–पृ०–78
11. 'चिन्तित हैं नील
ह्रास पर नागों के
पर प्रेरित करती हैं
पग–पग पर उसे
नई चुनौतियाँ
वह लोक संग्रह करते जाएँगे

नागों का
बचाएँ गे स्वप्नों को
अन्तिम क्षण तक।'
'कालवृक्ष की छाया में' –अग्निशेखर पृ०-39

12. 'कालवृक्ष की छाया में' अग्निशेखर पृ० 72
13. – वही – पृ० 42
14. '..... नाग अराजक स्थिति में पड़कर देवताओं की सर्व–सत्तावादी केन्द्रीय संस्कृति के सामने घुटने टेक देते हैं।'
'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर – 'कोशुर समाचार'–दिसम्बर 1998–पृ०–78
15. ' इस में हमारे समय की मानवीय सभ्यता की हमारी चिन्ताएँ अपनी समग्रता में मौजूद हैं – अपने सभी रंगों के साथ।' .... यह मिथक तमाम तरह के सत्ता प्रतिष्ठानों की नीयत उधेड़ कर सामने रख देता है।
'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर–'कोशुर समाचार'–दिसम्बर 1998–पृ०–78
16. 'नाग जाति के देवी देवताओं को देव–संस्कृति धीरे–धीरे अपने में समाहित कर ले जाती है। उदाहरण के लिए चोंच में कंकर लाकर दैत्य के ऊपर मार गिराने वाली स्थानीय मैना रूपी शारिका देवी को दुर्गा, शारदा को सरस्वती, सती को उमा, शिव को रुद्र, वितस्ता और सिन्धु के संगम को प्रयाग (वर्तमान शादीपुर)घोषित करना इसी सर्वसमावेश के आयाम हैं।'
'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर–'कोशुर समाचार'– दिसम्बर 1998–पृ०78
17. 'इस बीच मिथक से बाहर निकल कर नागों को फिर एक बार जलोद्भव के आतंक से घबरा कर सतीसर छोड़ कर मैदानों में आना पड़ा ।
'सतीसर का मिथक' – अग्निशेखर 'कोशुर समाचार'–दिसम्बर 1998–पृ०–79
18. सुलतान महमूद गज़नवी (997 ई० – 1030 ई०) सोमनाथ मन्दिर आक्रमण – 1025 ई० सोमनाथ मूर्ति विखण्डन – 1026 ई०
19. 'कालवृक्ष की छाया में ' अग्निशेखर – पृ० 44
20. 'कालवृक्ष की छाया में ' अग्निशेखर – पृ० 19
21. – वही – पृ० 22
22. – वही – पृ० 23
23. – वही – पृ० 24
24. – वही – पृ० 28
25. – वही – पृ० 29

26. 'कालवृक्ष की छाया में ' अग्निशेखर पृ० 31–32
27. – वही – पृ० 33
28. – वही – पृ० 34–35
29. – वही – पृ० 37
30. – वही – पृ० 50
30.(अ) वही – पृ० 56
30.(ब) वही – पृ० 61
31. – वही – पृ० 62
32. – वही – पृ० 69
33. – वही – पृ० 71
34. – वही – पृ० 72
35. – वही – पृ० 73
36. – वही – पृ० 75
37. – वही – पृ० 76

कविता संग्रह – ' कालवृक्ष की छाया में'
कवि – अग्निशेखर
प्रकाशक – सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली – हैदराबाद (142 ई, पॉकेट–4, मयूर विहार, दिल्ली–110091)
प्रथम संस्करण – सन् 2002 ई०
आवरण चित्र – वीर मुंशी
'अपने समय को समझने का साहस' – राजेश जोशी (परिचय)
मूल्य – 125 रूपये
सम्पर्क – बी० 90 / 12, भवानीनगर, जानीपुर, जम्मू–180007.

कहानी लेखक महाराजकृष्ण सन्तोषी

(एक अनुसंधित्सु की नज़र में)

कश्मीर घाटी से विस्थापित समकालीन हिन्दी कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर तथा विकट यथार्थ से निरत जूझता जीवन्त कहानीकार महाराज कृष्ण सन्तोषी (जन्म 14 जून, 1954 ई०) आज कल जम्मू में विस्थापित जीवन की यातना झेल रहा है। पिछले 16 वर्षों में सन्तोषी ने कई ऐतिहासिक तथ्यों, लोक कथाओं के सार्थक सन्दर्भों और यथार्थ से जुड़े यातना प्रद वेगवान अनुभूति के मार्मिक क्षणों को कहानी के ताने–बाने में पिरोकर प्रस्तुत किया है।

समकालीन हिन्दी कहानी के कथ्य और शिल्प से बख़ूबी वाकिफ़ होते हुए भी इन्होंने रुटीन से तनिक अलग हटकर आँचलिक तत्त्वों को समेटते हुए अपनी विशिष्ट पहचान की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

सन्तोषी पिछले 16 वर्षों से यातनाप्रद जीवन जी रहा है। विस्थापन की राजनीति का शिकार बन कर राजनेताओं के झूठे आश्वासनों की मार उस पर बराबर पड़ रही है। हर क्रिया की समान रूप से प्रतिक्रिया होती है और वही भीतरी प्रतिक्रिया उसकी कहानियों के पात्रों द्वारा विभिन्न स्थितियों में अभिव्यक्त हुई है। अत्यंत लघु आ़कार की कहानियों में वे इतिहास के झूठे सच पर प्रहार करते हुए बुद्धिजीवियों की अदालत में अपना इस्तिग़ासा पेश करते हैं। लघु आकार के भीतर पात्रों की सोद्देश्य परिकल्पना सार्थक भी है और अनुपम भी। विस्थापन की ट्रेजिड़ी से जुड़ी सन्तोषी की ग्यारह कहानियों का क्रम इस प्रकार है :–

1. 'बिच्छू घास' – 'शीराज़ा' – जम्मू कश्मीर कल्चरल

अकादमी, जम्मू -- दिसम्बर 1990 जनवरी 1991 (द्वय/द्वै मासिक)

2. 'कहने वाला कहता है' --'हंस' – दिल्ली – मार्च 1992 ई०
3. 'अपहरण' ' कोशुँर समाचार'--दिल्ली -- अप्रैल–मई 1995 ई०
4. 'आयेंगे हम लौट के ऐ वतन' ' हंस' – दिल्ली जून 1995 ई०
5. 'हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता' -- 'हंस' -- दिल्ली – मई 1996 ई०
6. 'घर वापसी'– 'कोशुँर समाचार' – दिल्ली -- अप्रैल 1997 ई०
7. 'अब अकन्दुन कहाँ है' – 'शीराजा' --जम्मू -- अगस्त--सितम्बर 1998 ई०
8. 'घेर देवता' – शीराज़ा' -- जम्मू – अप्रैल–मई 2001 ई०
9. 'कोख' -- 'कथादेश'– दिल्ली – मई 2002 ई०
10. लड़ाई' 'कोशुँर समाचार' – दिल्ली अगस्त 2002 ई०
11. अस्थियों का सौदा' 'कोशुँर समाचार' – दिल्ली -- जनवरी 2003 ई०

इन ग्यारह कहानियों में विस्थापन की वेदना साकार हो उठी है। सन्तोषी बुद्धिजीवी युवा कथाकार एवं कवि है। दक्षिणी कश्मीर के एक इतिहास प्रसिद्ध गाँव के मूल निवासी, साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित–प्रभावित कहानीकार ज़िन्दगी के कटु यथार्थ को, चाहे वह कितना ही भीषण और बीभत्स क्यों न हो, बिना किसी दुराव छिपाव के अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। उन्हें आदर्श से कोई लगाव नहीं; वे रूढि के बन्धन में बन्धे नहीं यद्यपि परम्परा के प्रति वे अवश्य आकर्षित हैं। उनका इतिहास बोध अनुपम है। कश्मीर इतिहास के वैभवशाली विगत से वे भली भाँति परिचित हैं। कश्मीर में इसलाम के हठात् प्रवेश के परिणामस्वरूप दो संस्कृतियों की आपसी टकराहट से उत्पन्न भीषण गर्जना आज भी उन्हें कानों में सुनाई दे रही है। वे घाटी के राजनीतिक इतिहास से भी अवगत हैं। समकाल में चल रहे

राजनीतिक कुचक्रों से मार खाये विस्थापित का पीड़ित जीवन जीने के लिये विवश हैं। अल्पसंख्यक होने की पीड़ा वे भुगत रहे हैं। धार्मिक उन्माद से ग्रसित वातावरण में उनके पूर्वज कैसे अपने अस्तित्व को बचा सके उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा है। वे उस सामाजिक बनावट (Fibre) से भी भली भाति परिचित हैं जिसकी सीमाओं के भीतर घाटी में लगभग 35 वर्षों तक रहने की विवशता झेल कर वे एक सीमा तक विद्रोही साहित्यकार का रूप धारण कर चुके हैं। विस्थापन के बाद पिछले 16 वर्षों से पाप–रहित शाप–ग्रस्त जीवन जीने को विवश हैं। उन्हें आज अपना अस्तित्व बोध बेहद सता रहा है। इसी लिये उन्हें व्यवस्था से नफ़रत है और रूढ़ि ग्रस्त परम्परा के विरुद्ध आक्रोश। वे व्यक्ति चिन्तन को उसके मलरहित सहज स्वाभाविक रूप में फलते फूलते देखना चाहता है लेकिन व्यवस्था की गुलामी को सहने की मजबूरी ने उसे अपने वर्तमान के प्रति निराश कर दिया है फलतः व्यंग्य और विद्रोह के माध्यम से सत्ता के शक्ति केन्द्रों को चुनौती देता हुआ वह सर्जन के नये आयाम तलाशता है।

1. सन्तोषी की समस्त कहानियों का एक आकर्षण उनके आँचलिक रंग में देखने को मिलता है। वे अपने लोक जीवन पर मोहित हैं। इसे मैं यदि कश्मीरी रंग या कश्मीरियत कहूँ तो अनुचित नहीं होगा। कहानियों का परिवेश घाटी से जुड़ा है – विशेष कर इस के भूत और वर्तमान से । हीमाल और नॉगराय, अकनन्दुन, फिरन और कांगड़ी, घर देवता औ मछली भात का पर्व दिन, चिनार और वितस्ता, मूली की चटनी और भात, पीले चावल, दाल्य बट्टा (दाल खोर पण्डित), शीर चाय (नमकीन चाय), शंकराचार्य मन्दिर और गुलमर्ग, डबल पैसा, चिनार बाग, मुजाहिद, खरपठान, कमांडर, काफ़िरों का बैल, बोन्यमाल, मज़ारबल आदि अर्थ गर्भित शब्द प्रयोगों से इन कहनियों में एक अंचल–विशेष का सौन्दर्य खिल उठा है। उस अंचल विशेष की वर्तमान स्थिति से कहानीकार प्रेरित भी रहा है और प्रभावित भी हुआ है। वह घाटी की प्रत्येक राजनीतिक उथल पुथल और सांस्कृतिक संघर्ष से

बख़ूबी परिचित हैं अतः कहानियों को विश्वसनीय पृष्ठभूमि प्रदान करने में सफल हुए हैं। सन्तोषी अपने अंचल के प्रति ईमानदार है और उसकी प्रत्येक कहानी किसी न किसी तरह घाटी के जन जीवन से जुड़ी है। इन कहानियों को पूर्ण रूप से समझने के लिये इनके अंचल विशेष की सम्यक् जानकारी प्राप्त करना ज़रूरी है। इसके लिये न सरकारी बयान पर्याप्त हैं और न दूरदर्शन तथा आकाशवाणी का प्रचार–तन्त्र।

संतोषी की कहानियों के मिज़ाज को जानना, समझना और महसूस करना बहुत ज़रूरी है। चाहे वह 'बिच्छू घास' हो या 'कहने वाला कहता है', 'घर वापसी' हो या 'अब अकनन्दुन कहाँ है', घर देवता' हो या 'कोख' प्रत्येक रचना अंचल–विशेष के लोक मानस से जुड़ी है और जब तक पाठक अथवा आलोचक के पास उस लोक के विषय में पर्याप्त जानकारी न हो तब तक कहानियों पर लेखनी चलाना अनुचित होगा। 'अस्थियों का सौदा' कहानी के अन्त में प्रसिद्ध कश्मीरी कवि मास्टर ज़िन्द कौल की एक बहुचर्चित कविता 'सुमरन' की प्रथम दो पंक्तियाँ (बिना हिन्दी अनुवाद के) उद्धृत करना इस बात का प्रमाण है कि संतोषी की जड़ें अपनी माटी में बहुत गहरी हैं।

o o o

2– कहानीकार के व्यक्तित्व की एक झलक स्वयं उनके शब्दों में यों झलकती हैं, लिखते हैं :–

' वैसे जब कभी मैं अपने व्यक्तित्व के बारे में विचार करता हूँ तो मुझे हमेशा यूं लगता रहा है कि मैं देखने में मुसलमान लगता हूँ, व्यवहार से हिन्दू तथा विचार से कम्यूनिस्ट ।'

मेरे विचार से वे एक ईमानदार कहानीकार और सर्जनकर्ता हैं और इसके अतिरिक्त शेष सभी लक्षण आज के सन्दर्भ में बेमानी हैं। विचारों से प्रगतिशील होना अनुचित नहीं। यथार्थ की आँच से अज्ञान के ज़ंगालूदः लोह को पिघलाना कोई बुरी बात नहीं लेकिन सिद्धान्तों

की आड़ में विदेशी आक़ाओं की ग़ुलामी करना और साहित्य को प्रचार का साधन बना कर प्रयोग में लाना स्वयं साहित्यिक स्वास्थ्य के लिये उचित नहीं; संतोषी ने इस बात का अपनी कहानियों में पूरा ध्यान रखा है।

o o o

3–संतोषी की कहानियों में हास्य और व्यंग्य को अभिव्यक्ति के एक सशक्त माध्यम के रूप में व्यवहार में लाया गया है। वे अपने भीतरी आक्रोश और पराजय की पीड़ा को सहन नहीं कर पाते। उन्हें व्यवस्था से घृणा है, रूढ़ि से नफ़रत है और आधारहीन आदर्शों के प्रति वे उदासीन हैं। वे अल्पसंख्यक होने की यातना मन ही मन झेल रहे हैं, दूसरे के आतंकी जनून को देखकर वे अपनी असहायावस्था पर क्रुद्ध हो उठते हैं अतः कहीं हल्के और कहीं तीखे व्यंग्य वचनों से हमें भीतर ही भीतर अपने वजूद की सार्थकता को तलाशने के लिये विवश करते हैं। बात–बात में बात कहने की उन्हें आदत है। हल्की मुसकुराहट के साथ वह कभी ऐसी बात भी कह डालते हैं कि सुनने वाला तिलमिला उठता है।। उनकी कहानियों में व्यंग्य सोद्देश्य है। 'घर वापसी' कहानी में पठान का समलैंगिक सपना तो भारतीय शासन व्यवस्था, कुर्सी की राजनीति, अव्यवहारिक (impracticable) कूटनीतिक कौशल (strategy) और ईंट का जवाब पत्थर से न दे सकने की मजबूरी/अक्षमता पर ग़ज़ब का प्रहार है। 100 करोड़ से भी अधिक जनसंख्या वाले देश को आज 20–25 करोड़ी की जनसंख्या वाले एक उन्माद ग्रस्त आतंकी देश ने बन्धक बना के रख छोड़ा है। कश्मीरी भाषा में इसके लिये 'चोंचि–गछुन* शब्द का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है।

व्यंग्य प्रहार करके कभी–कभी वह कहानी को नया मोड़ देते हैं और कभी असलियत को बेनिक़ाब करते हैं। संतोषी मीठी मुसकान के साथ विषपायी बन कर व्यक्ति और समष्टि की किंकर्तव्यविमूढ़ता पर चोट करते हैं। गहन इतिहास बोध उनके व्यंग्य को सार्थक बना देता

* 'ख़ौफ़ (डर, भय, आतंक) से वक्र हो जाना, अकड़ जाना, चेतना शून्य हो जाना

है। चन्द उदाहरण देखने योग्य हैं :–

1. (ख्वाजा) – ' वह पार्टी का ब्लॉक प्रेज़िडेंट था और दिल्ली दरबार की छत्र छाया में पलने वाला गाँव का एक इज़्ज़तदार आदमी ! (अपहरण)
2. 'मेरी चुप्पी से आहत पत्नी बिना कुछ कहे ही नाराज़ संसद की तरह कमरे से बाहर लौट जाती है ।' (आयेंगे हम लौट कर ऐ वतन)
3. 'क्योंकि विस्थापितों के स्वयंभू नेताओं पर मुझे कोई भरोसा नहीं ।' (आयेंगे हम लौट कर ऐ वतन)
4. 'अकेले में तुम कश्मीरी मुसलमान बहुत अच्छे लगते हो, लेकिन .... (हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता)
5. 'दूरदर्शन के प्रवेश ने गाँव की रामलीला को ही ग़ायब कर दिया।' (हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता)
6. 'चिनार तुम्हारा अभिवादन कैसे स्वीकार कर सकता है, इन्हें नमस्कार सुनने की आदत जो नहीं रही ।' (घर वापसी)
7. 'पता नहीं घर देवता उसकी मौत पर रोया कि नहीं लेकिन पूरा गाँव उसकी मौत पर ज़रूर रोया।' (घर देवता)
8. 'आओ दरगाह वापस चलते हैं । लेकिन किस लिए ? दोनों दौरतों ने एक साथ पूछा । दरगाह में उस बड़े पीर से पूछते हैं कि क्या उसकी भी कोई बेटा मरा है .... ' (कोख)
9. 'धर्म बचाना है तो अपने बैल ताकतवर बनाओ।' (लड़ाई)

संतोषी में अद्‌भुत शक्ति है चोट करने की। व्यंग्य का यह तीख चुभता हुआ प्रहार विश्वासों और मान्यताओं की दुनिया में तूफ़ान ला खड़ा करता है। कई प्रहार इन्सानी वजूद को ही हिलाकर रख देते हैं।

o o o

4– संतोषी की कहानियों में यौन के प्रति आकर्षण स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुआ है। स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों पर बात करना अथवा सहवास की तृप्ति हेतु अकुलाहट व्यक्त करना कोई पाप नहीं। युवा कथाकार का भौतिक जीवन/सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होना और पति–पत्नी के सहवासी रिश्तों को सांकेतिक शब्दों मे अभिव्यक्त करना वास्तव में जीवन जीने की स्वस्थ दिशा का ही परिचायक है। उन्हें जीवन जीने में विश्वास है। सहज रूप से निम्न मध्यवर्गीय जीवन जीते हुए वे विषपायी बनने के साथ–साथ सौन्दर्यान्वेषी बनकर तृप्ति का आनन्द लूटते हैं। वे जीवन को उसके सहज और स्वाभाविक रूप में अर्थात् प्रकृत रूप में जीना चाहते हैं। मनोचिकित्सकों का मानना है कि विस्थापितों के जीवन में दाम्पत्य जीवन सब से अधिक शाप–ग्रस्त हुआ है। यौन अतृप्ति और मानसिक विकास परस्पर एक दूसरे से जुड़े हैं। मस्तमौला कहानीकार ने ज़िन्दः दिल होने का प्रमाण देते हुए प्यासे हृदयों की अकुलाहट यों व्यक्त की है :–

अ) 'धीरे दरवाज़ा बन्द कर, पत्नी को एक दम आलिंगन में जकड़ लेता हूँ ।

पत्नी भी पूरे ज़ोर से मुझे कस लेती है। समय का भय फिर डंडा लेकर हमें अलग कर देता है। पत्नी व्यंग्यात्मक मुस्कान लिए कहती है –

'उम्मीद रखो । आएंगे दिन ..... ।' (बिच्छू घास)

आ) 'अचानक बिजली गुल हो गई और मैंने बच्चों से टकराए बिना पत्नी तक का रास्ता सफलता पूर्वक तय किया। अगली सुबह हमें कश्मीर जाना था। ' (घर वापसी)

इ) वास्तव में चिनार के पेड़ों पर फिदा थी हीमाल। वह चिनार के पत्तों को अपनी ज़िन्दगी का एक हिस्सा मानती थी। दोनों टहलते टहलते चिनार बाग पहुँचे और सब्ज़ार* पर लेट

* सब्ज़ःज़ार,

गये। दोनों के भीतर एक सांझा स्वप्न अंकुरित हो चुका था। 'इन चिनारों के पेड़ों में आखिर क्या है जो तुम इन पर इतना प्यार लुटाती रहती हो। – नागराय ने पूछा।
हीमाल मुस्करायी और नागराय ने उसके मुस्कराते अधरों का चुम्बन ले लिया।' (कहने वाला कहता है)

ई) उन दिनों देश में ताम्बे के सिक्के प्रचलित थे। इन सिक्कों में एक पैसे के छेद वाला सिक्का भी था जिसे कश्मीर में 'डबल–पैसा' कहकर पुकारते थे। मेरे पिता इस छेद वाले सिक्के में धागा डाल कर अपने गले में लटका रखते। उनकी यह खोज थी कि इसे सम्भोग के समय मुंह में रखने से पौरुष बढ़ता है। पता नहीं वह डबल पैसा पिता जी ने मुझें क्यों नहीं दिया।' (घर वापसी)

इस प्रकार सन्तोषी की कहानियों में जवानी बहुत बतियाती है।

o o o

5– सन्तोषी एक बुद्धिजीवी कहानीकार है। वह इतिहास की सच्चाई से वाक़िफ़ है।। राजाश्रय में लिखे गये अथवा सरकारी इतिहास ग्रन्थों में वर्णित घटना क्रम पर उन्हें विश्वास नहीं। वह पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ अपने अनुभूत सत्य को कागज़ पर उतार देता है। दूध बेचने वाले एक बुजुर्ग कश्मीरी मुसलमान का अतिशय आदर सत्कार (घर वापसी) उसे खोई हुई कश्मीरियत की याद दिलाता है। उसे भ्रम है इस बात का कि " मैं देखने में कश्मीरी मुसलमान लगता हूँ ' (घर वापसी) लेकिन हाजी साहब उसे देखते ही कहते हैं – ' तुम कश्मीरी पण्डित हो न '

वह ईमानदारी के साथ एक सवाल हम से पूछता है कि जब मुसलमान की दुकान से दूध खरीद कर पीने में कोई आपत्ति नहीं तो

मुसलमान नानवाई की दुकान से रोटी खरीद कर खाने में क्या आपत्ति है ? (घर वापसी) ध्यान दीजिये जब सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण लगता है तो हम बहुत से खाद्य पदार्थ फेंक देते हैं और जिन्हें फेंकने में हम असमर्थ होते हैं उनपर दर्भ का तिनका रख कर आशंका के घेरे से बाहर निकलते हैं। वाह ! राहु के कोप से बचने का क्या उपाय है ! संतोषी की कहानियों को सम्यक् रूप से समझने के हेतु कश्मीर–इतिहास की जानकारी होना नितान्तावश्यक है। कश्मीर इतिहास का स्वर्णिम हिन्दू राज्यकाल, इस्लाम आगमन, 20वीं शताब्दी में डोगरा राज्य और सत्ताधारियों के विरुद्ध आन्दोलन, स्वतन्त्राता प्राप्ति के बाद पिछले पच्चास–पचपन वर्षों का शासन/कुशासन, भारत सरकार द्वारा यथार्थ को पहचानने की अयोग्यता और पिछले 16 वर्षों का आतंकी हाहाकार – जब तक इतिहास की इन घटनाओं की समुचित जानकारी नहीं होगी तब तक कोई भी आलोचक सन्तोषी की रचनाओं के साथ न्याय नहीं कर सकता। अल्पसंख्यक विस्थापित होकर इतिहास की किस दुर्घाटना का शिकार हुआ है और नेता जन उसकी बदहाली पर किस प्रकार मगरमछ के आँसू बहाते हैं – इन समस्त बातों की समयक् जानकारी होनी ज़रूरी है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व इस्लामीकरण का जो भीषण षड्यन्त्र चरण बद्ध तरीके से क्रियान्वित हो रहा है उसकी तह में जाना और सही परिप्रेक्ष्य में उसे समझना भी कहानियों के कथ्य को समझने के लिये सहायक होगा।

ये कहानियाँ मनोरंजन के हेतु नहीं लिखी गई हैं न किसी रेडियो स्टेशन के फरमाइशी कार्यक्रम में प्रसारित होने के लिए लिखी गई हैं । इनका दूरदर्शन जैसे सरकार के धन कमाऊ बेटे से भी कोई वास्ता नहीं है। ये हृदय चीर देने वाली मानव जीवन की विवशताओं से जुड़ी हैं। पढ़ कर स्वतः ही मानव मूल्यों के खरे और खोटे की पहचान हो जाती है ।

o o o

6– 'मिन्नी कहानी' अथवा लघु–कहानी लेखन के क्षेत्र में सन्तोषी को पर्याप्त सफलत प्राप्त हुई है। इस दृष्टि से 'लड़ाई' 'अस्थियों का सौदा' 'कोख' और 'आयेंगे हम लौट कर ऐ. वतन' उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इन कहानियों में घटना एक फ़्लैश के रूप में मानस के स्क्रीन पर उभर कर सामने आती है और तूफ़ानी चाल से अपना प्रभाव गहराते हुए विलुप्त हो जाती है। यही फ्लैश कहानीकार की सर्जनात्मक प्रतिभा को सक्रिय बना देता है। वह तुरन्त तूलिका के चन्द हल्के आघातों से मानस के चित्र फ़लक पर एक रेखाचित्र अंकित कर देता है और वही अंकित रेखाचित्र शब्द–चित्रों के माध्यम से कहानी का रूप धारण करता है। इन मिनी कहानियों का आँचलिक सौन्दर्य भी देखते ही बनता है। 'लड़ाई' कहानी में दक्षिणी कश्मीर की मिट्‌टी की ख़ुशबू है, सोंधी सोंधी बास है, लाल सलाम का चाव है और दबे शब्दों में काफ़िर को कुचल देने का संकल्प ध्वनित हो रहा है।

o o o

7– तकनीक की दृष्टि से भी संतोषी की कहानियाँ अपने आप में विशिष्ट हैं। बहुधा वे स्वयं प्रमुख पात्र बन कर कहानी सुनाते हैं। आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग करते हुए वर्णनों की ऊब मिटाने के हेतु संक्षिप्त कथोपकथनों की सृष्टि करते हैं।

सन्तोषी भाषा के धनी हैं । उनकी अभिव्यक्ति संयत, सांकेतिक एवं अर्थगर्भित होती हैं। वे हल्के मज़ाक़ के साथ बात शुरु करते हैं और नाटकीय अन्दाज़ में व्यक्ति, वर्ग, जाति और समुदाय के चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालते हैं। अपनी भरपूर कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हुए उन्होंने हक़ीक़त, इंसानियत, तवारीख़ और कहानी का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए इतिहास के मलबे के नीचे दबे 'इतिहास के सत्य' को अनावृत करने की चेष्टा की है और इस दृष्टि से उनका प्रयास स्तुत्य है। चन्द भाषाई/भाषिक प्रयोग देखने योग्य हैः–

1. 'इस सौतेले शहर में क्या हम निर्भय होकर अपनी जड़ें फैला सकेंगे ? (बिच्छू घास)

2. ' चलहट दाल्य बट्टा (दालखोर पण्डित) (अपहरण)

3. बर्फ़ !
   चिनार !
   वितस्ता !
   हरियाली !
   हवाएं !
   सब मुजाहिद
   सब मुजाहिद
   (आयेंगे हम लौट कर ऐ वतन)

4. " डरना तुम पण्डितों का जन्म सिद्ध अधिकार है
   और लूट मार करना तुम्हारा ...... "
   (हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता)

5. 'निज़ाम मुस्तफ़ा के गगन चीर नारों ने पण्डित घरों की सांकलें तक तुड़ा दी।' (हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता)

6. 'ज़ालिमो ! जाबिरो ! हिन्दुस्तानी कुत्तो ! जैसी लिखी घोषणाएँ हमें बराबर यह एहसास दिला रही थीं कि हम कहाँ हैं ।' (घर वापसी)

7. ' अनिश्चय, भय, मृत्यु और संत्रास की भीषणतम कल्पनाएँ पूरे तलघर में तैरने लगीं । कमरे में भाषाहीन अन्धेरा धीरे–धीरे घुलने लग गया था। ' (घर देवता)

8. ' माँ के विचारों का चरखा थम गया।' (घर देवता)

9. ' नहीं ऐसा नहीं हो सकता । काफ़िरो का बैल हमारे बैल

को नहीं हरा सकता ।' (लड़ाई)

10. 'इस नश्वर शरीर को यहीं छोड़ कर वह किसी लम्बी यात्रा पर निकल चुकी थी। शायद अपने पुरखों को यह बताने कि सुना तुम ने .... तुम्हारी अस्थियों का सौदा हो गया ।' (अस्थियों का सौदा)

अपनी मौलिक रचना प्रक्रिया, देशज शब्द प्रयोगों, आँचलिक विश्वासों एवं मान्यताओं से जुड़े मुहावरों और कहावतों के आधार पर कहानीकार 'देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर' उक्ति को सार्थक कर देते हैं।

o o o

निष्कर्ष :

सन्तोषी मूलतः अपनी मिट्टी से जुड़ा कहानीकार है। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा निरन्तर निखर रही है। आज के कम्प्यूटरी कृत सूचना प्राद्योगिकी के युग में एक अनमोल अनुभूति, एक मुलाक़ात, एक साधारण/असाधारण घटना, किसी एक क्रिया की प्रतिक्रिया, एक अनहोनी बात, एक चोट, स्वीकृति या अस्वीकृति सर्जना का कारण बन जाती है। कहानी के लिये अब न तत्त्वों का बन्धन दरकार है और न शास्त्रीय नियमों की पाबन्दी । कहानी ज़िन्दगी की एक हक़ीक़त बन गयी है जिसको नकारना अथवा जिसकी उपेक्षा करना आज के बुद्धि–जीवी के लिये सम्भव नहीं।

सन्तोषी ज़िन्दगी की पथरीली ऊबड़–खाबड़ धरती पर डग भरता हुआ, ठहर सँभल कर तथा पीछे मुड़ कर यादों के शीशमहल में उतरता है और अपने हसीन स्वप्नों की पृष्ठभूमि में ज़िन्दगी के ज़हरीले यथार्थ को सर्जन की पूरी नाटकीयता और चातुर्य के साथ कहानी के

माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

यह ज़हरीली सच्चाई मेरे जीवन से जुड़ी है, आपके जीवन से जुड़ी है, हम सबके जीवन से जुड़ी है।

23 जुलाई, 2003 ई०

***

'कोख' और 'बिच्छू घास'

'सन्तोषी' की क़लम से

'कोख'

संक्षिप्त कहानी 'कोख' 'कथादेश' में मई 2002 ई0 में प्रकाशित हुई। कहानी आँसुओं से तर है, बेहद करुण। तीन मुस्लिम महिलाओं की वेदना से जुड़ी। तीनों महिलाएँ आतंक से पीड़ित यातना ग्रस्त जीवन जीने को विवश हैं। कहानीकार के शब्दों में 'उनकी कोख का दर्द एक था' ।

वे जो आतंक से भयभीत होकर घर छोड़ने पर विवश हुए उनकी ट्रेजिड़ी विस्थापन से जुड़ी है लेकिन वे बहुसंख्यक जिन्हें दस दिनों में आज़ादी दिलाने का आश्वासन दिया गया था, यक़ीनन चक्की के दो पाटों में पिस रहे हैं। यह उस वस्तु स्थिति का कटु यथार्थ है । सवाल यह नहीं कि इसके लिये ज़िम्मेदार कौन है सवाल यह है कि निर्दोष नागरिक अन्तर्राष्ट्रीय षड़यन्त्रोद्भूत गगन चुम्बी लपटों की भेंट चढ़ रहा है। इस घातक षड़यन्त्र के विकराल चेहरे को धर्म के रेश्मी आवरण में ढक लिया गया है।

ताहिरा विधवा हो चुकी है और पुत्र मुखबिर की उपाधि पाकर आतंक की भेंट चढ़ जाता है।

साजिदा का पुत्र एक पुलिस कर्मी था। आतंकियों की गोलियों का शिकार बन कर अबदी नींद में सो जाता है।

खुर्शीदा का पुत्र मुजाहिद था। मुखबिर की सूचना पर पुलिस की गोलियों का निशाना बन जाता है।

तीनों का सुखद पारिवारिक जीवन आतंक की भेंट चढ़ कर उजड जाता है। लगता है कि तीनों को एक साथ काले नाग ने डस लिया है। तीनों महिलाएँ गाँव की दरगाह पर पीर के सामने खूब रोईं। लौटते समय पहली महिला ताहिरा अपनी व्यथा कथा साजिदा को सुनाती है और अलग बैठी खुर्शीदा उन की बातें सुन कर निकट आकर अपना ग़ुस्सा उन पर उतार देती है क्योंकि उसे विश्वास है कि उसका मुजाहिद पुत्र मुख़बिर और पुलिस की मार खाकर ही मरा है। वह ताहिरा और साजिदा को दरगाह वापस लौट चलने के लिये कहती है ताकि दरगाह में बैठे पीर से पूछें कि 'उसका कोई बेटा मरा है ...!' कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है।

पिछले सोलह वर्षों के आतंकी नर संहार और हाहाकर में किसी भी बड़े या छोटे नेता का लाड़ला कुछ अपवादों को छोड़ कर भेंट नहीं चढ़ा है। अरे वे तो विदेशों में तालीम हासिल कर रहे हैं, व्यापार कर रहे हैं, मौज मना रहे हैं या देश के किसी बड़े शहर में सुरक्षित अपना वैभवशाली जीवन जी रहे हैं।

आहुति चढ़ती है ताहिरा, साजिदा और खुर्शीदा (अर्थात् आम आदमी) के हृदय के टुकड़ों की। सारी दुनिया उजड़ जाये लेकिन नेताजन सलामत रहे बस स्वतन्त्र भारत की यही पहचान शेष रह गई है। आजकल तो नेताजनों के जन्मजात मेधावी लाड़ले, राजनीतिक रंगमंच के उत्तराधिकारी बन कर राजा महाराजाओं और रंगीन मिज़ाज पादशाहों को भी पीछे छोड़ रहे हैं।

निष्कर्ष :–

1. प्रस्तुत कहानी का शीर्षक अत्यन्त सार्थक एवं प्रभावोत्पादक है। तीनों महिलाओं की कोख का दर्द एक है। तीनों अपने नौजवान बेटों से वंचित हो गईं हैं। लादीनी और तालिबानी रंगमंच के सूत्रधारों ने तीनों नवयुवकों को जीवन के रंगमंच

पर अपना अभिनय दिखाने से पूर्व ही यमपुरी के लिये रवाना कर दिया।

2. विचारणीय बात यह है कि आतंकी व्यभिचार फैलाने से हमें क्या मिला ? क्या यह सच नहीं है कि –

   अ) बुजुर्गों ने अपनी बुजुर्गी खोदी।
   आ) नौजवानों ने अदब (शिष्टाचार) और शर्म (लज्जा) ।
   इ) विस्थापितों ने अपना मूलाधार खो दिया।
   ई) और बहुसंख्यकों ने रातों की नींद और दिन का चैन।

   आज सब पश्चाताप की अग्नि में पोर–पोर और अंगुल–अंगुल जल रहे हैं। लेकिन समस्या यह है कि बिल्ली के गले में कौन बाँधे घंटी।

3. मुजाहिदों का ख़्वाजा के घर मुल्ला सहित पुहँच कर कमांडर के साथ उसकी बेटी का निकाह कराने का आदेश और ख़्वाजा के नीचे से ज़मीन खिसकने का एहसास 'जहाद' शब्द के आगे कई प्रश्न चिह्न खड़ा कर देता है। यह आतंकी व्यापार का यथार्थ है, यथार्थ की अतिरंजना नहीं। यह तो इतिहास है जो साहसी साहित्यकार के संकल्प से मुखर हो उठा है।

4. तीनों औरतें ' दुख के एक ही घेरे में खड़ी थीं'। सीमा पार के मुल्लाओं द्वारा फैलाये गये धार्मिक उन्माद यानी जनून ने उनके वर्तमान को ख़ून से रंग कर लहूलुहान कर दिया है। तीनों पीर की दरगाह से लौट कर दिशाहीन भविष्य के धुँधलके में खो जाती हैं।

5. दरगाह के बाज़ार में पीर के नाम पर बिकाऊ तावीज हमारे आत्मघाती रूढ़ विश्वासों पर एक गहरी चोट है। 'खर–पठान' शब्द का प्रयोग भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रयोग की सार्थकता

को कश्मीर के अफ़गान राज्यकाल (1753–1819 ई०) में ढूँढा जा सकता है। जाने कितने क़िस्से और कहानियाँ उनके दिमाग़ी सोच के साथ जुड़ी हुई है।

6. कहानी का अन्त मर्मस्पर्शी है। पीर से यह पूछने का संकल्प 'कि क्या उसका भी कोई बेट मरा है .... ' वस्तुतः संतप्त मानव की क्षुब्ध प्रतिक्रिया है। आहत और क्षुब्ध प्रतिक्रिया खुर्शीदा को पीर से सवाल पूछने के लिये प्रेरित करती है।

7. कश्मीर की परम्परा से जुड़ी कई क्षेत्रीय विशेषताओं को कहानी के कलेवर में समेट कर सन्तोषी इसे आंचलिक रंग में रंग देते हैं। हिन्दी भाषा–भाषी 'फिरन' की नज़ाकत को क्या समझे। 'खर पठान' को जानने और समझने के लिये उसे कश्मीर के इतिहास का अध्ययन करना होगा। सन् 1990 ई० में मुखबिर शब्द वैसे ही चल पड़ा जैसे सन् 2002 ई० में प्रदेश में सत्ता परिवर्तन के साथ 'हीलिंग टच' शब्द चल पड़ा है। दढ़ियल मुजाहिद या नक़ाबपोश बन्दूकी शब्दों को पढ़ कर किसी की रूह काँप उठती है और कोई अपनी सुधबुध खो बैठता है।

8. उर्दू भाषा के शब्दों का खुल कर प्रयोग किया गया है शायद पात्रों की धार्मिक – सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखने के उद्देश्य से ऐसा किया गया हो। मेरे विचार से सर्जन को भाषाई क़ैद में बन्द करने की ज़रूरत नहीं। अन्य भाषाओं की शब्दावली के प्रयोग से प्रस्तुत रचना की प्रेषणीयता में वृद्धि हुई है।

'कोख' कहानी देखने में छोटी लगती है लकिन समस्त मानवता को व्यथा के पारावर में डुबो कर हृदय को चीरते हुए अपना गहन और गम्भीर निशना पीछे छोड़ देती है।

o o o

'बिच्छू घास'

'बिच्छू घास' शीर्षक कहानी में अत्यन्त संक्षिप्त सात फ़्लैश क्रम–बद्ध रूप से सामने आते हैं।

आज किराये के एक कमरे में रह रहा एक निम्न मध्यवर्गीय विस्थापित परिवार अपना सब कुछ पीछे छोड़ कर आया है। परिवार के वरिष्ठ सदस्य पिताजी इसी ग़म में ग़मज़दा है। नवम्बर के महीने में उसे अपने सेबों के बाग़ की याद सताती है, विह्वल हो उठते हैं और पुत्र उसकी आखों में 'टिमटिमाती ज़िन्दगी की लौ बचाने की कोशिश करता है।"[1]

दूसरा फ़्लैश किराये के कमरे में रहने की विवशता, बच्चों की शरारतें और मकान मालकिन के बड़बड़ाने का एहसास दिलाता है।

तीसरा फ़्लैश मूली की चटनी के साथ भात खाने की विवशता और मुख्य पात्र के मानस में तड़फड़ाती शंका कि ' इस कटु वर्तमान के होते कैसा होगा हमारा भविष्य ?"[2]

चौथा फ़्लैश मामा मामी के विस्थापित परिवार से सम्बन्धित और पाँचवा फ़्लैश दाम्पत्य जीवन की ट्रेजड़ी से जुड़ा है। विस्थापित होकर टेन्ट अथवा एक कमरा काल कोठरी आवास में वर्षों रह कर हमारा दाम्पत्य जीवन टूट गया, तार–तार हो गया। मानसिक रोगों ने इस जीवन को ग्रस लिया। सुखद सपने बिखर गये । पति–पत्नी के निजी जीवन में असन्तोष, क्षोभ एवं अवसाद के लक्षण पारिवारिक विघटन का कारण बन गये हैं।

आयुर्विज्ञान के शोधार्थियों ने इस मनःस्थिति का विश्लेषण कर आश्चर्य चकित कर देने वाले निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। आखिर यौन का भी भौतिक जीवन में अपना महत्त्व है इसे नकारा नहीं जा सकता।

---

1. 'बिच्छू घास' – 'शीराज़ा' – दिसम्बर–जनवरी 1990.–91 – पृ0–31
2. – वही – वही पृ0–32

केवल उम्मीद के सहारे ही जिया नहीं जा सकता। फ़्लैश देखने योग्य है :–

'धीरे से दरवाज़ा बन्द कर, पत्नी को एकदम आलिंगन में जकड लेता हूँ।

पत्नी भी पूरे ज़ोर से मुझे कस लेती है। समय का भय फिर ड़ंडा लेकर हमें अलग कर देता है। पत्नी व्यंग्यात्मक मुस्कान लिए कहती है :–

" उम्मीद रखो। आएँगे दिन ...।"[1]

छठे फ़्लैश में छोटी बहन रात देखे सपने को बयान करती है कि सेबों के बाग़ में बिच्छू–घास सर्वत्र उग आई है। सभी पेड़ गायब हो गये हैं। गुल माली ने यह क्या किया है। वह पुकार उठती है और एक गुस्सैल चील उसकी हथेली नोचने लगती है ।'

सातवें फ़्लैश में बहन के सपने की प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। मुख्य पात्र सोचता है कि ' क्या यह हमारी नियति की रील तो नहीं है ...... क्या हम सभी के बुरे सपने सुन सकेंगे ?'[2]

माँ अपने परम्परागत विश्वास के अनुसार बुरे सपने का प्रभाव दूर करने के हेतु और बला को टालने के उद्देश्य से पीले चावल बनाने लगी। कहानी समाप्त हो जाती है।

इस कहानी से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष इस प्रकार हैं :–

1. कहानी विस्थापित समाज के छिन्न भिन्न हुए जीवन से जुड़ी है। 'भारत देश महान' की तो यही महानता है कि ह्रदयहीन बनकर अपनी ही सीमाओं के भीतर अपने ही देशभक्त सपूतों को शरणार्थी बनाकर जीने को विवश करता है।

---

1. 'बिच्छू घास' – 'शीराज़ा' – दिसम्बर–जनवरी 1990–91 – पृ0–32
2. – वही – वही पृ0–33

2. सर्वत्र बिच्छू घास उग आई है –

कश्मीरी भाषा में एक कहावत है 'अनिमसोय, वॅवुम सोय, लॅजिम सोय पानसुई '

मैंने बिच्छू घास लाया, उसे बोया और आज उसी की काट सह रहा हूँ।

पहेली बूझना और अर्थ खोजना आपका काम है।

3. विस्थापन और पारिवारिक बिखराव एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं। सब कुछ छूट जाने की पीड़ा पिता की मानसिक अशान्ति का मूल कारण है। इसी लिए तो हुक्का लगातार पीते रहते हैं। घर की बहू आज टेंटावास अथवा 'एक कमरा काल कोठरी आवास' में बहूरानी से नौकरानी बन गई है। दाम्पत्य जीवन है शापित और पारिवारिक रिश्ते रह गये उपेक्षित।
4. समसामयिक जीवन से उभरी एक भयानक मनःस्थिति ने प्रस्तुत लघु कहानी को आकार प्रदान किया है । इस छोटी कहानी के कलेवर में इतिहास मुखर हो उठा है। पारिवारिक विघटन और रुग्ण मानसिकता ने जीवन के प्रति निराश कर दिया है।
5. सेबों का बाग़ बन्धुत्व, सद्भावाना और मिठास की याद दिलाता है आज उसी मिठास में लादीनी और तालबानी बिच्छू घास के अवांछित बीज मिल गये हैं और वृद्धि (growth) उतनी ही तेज़ है जितनी इस शहर में प्यराथीनियम (parathenium) एक (विदेशी घास घास) की है।
6. हमारा एक परम्परागत लोक विश्वास – पीले चावल बनाकर जानवरों और कुत्तों को खिलना तो बला (आफ़त) टल जायेगी अथवा वांछित फल–प्राप्ति के बाद शुक्राने के तौर पर पीले चावल बना कर लोगों में बाँटना – कहानी

को हमारी लोक मर्यादाओं के साथ जोड़ कर इसे आंचलिक रंग में रंग देता है।

7. कहानीकार मूलतः कश्मीरी है और हिन्दी भाषा का लेखक । कहानी की पृष्ठभूमि आंचलिक है और घटनाचक्र यहाँ के राजनीतिक दाँव–पेंच और अन्तर् राष्ट्रीय स्तर पर विस्तारवादी षड़यंत्रों से जुड़ा है। कहानी को समझने के लिए तनिक कश्मीर–इतिहास को गौर से पढ़ने की आवश्यकता है।

8. कहानी हमारे समकालीन जीवन से सम्बन्धित एक बीभत्स सत्य को मुखर करती हुई एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ बन कर हमें विवेक और तर्क के आधार पर चिन्तन करने को प्रेरित करती है।

9. मेरे विचार से कहानीकार के इस कथन में व्यंग्य–प्रधान चोट है कि 'उम्मीद रखो । आएं गे दिन ..... ।' पिछले 16 वर्षों से हम उम्मीद के सहारे ही जी रहे हैं। पुरानी पीढ़ी द्रुत गति से हमारा साथ छोड़ कर हम से विदा ले रही है। अपने ज़ख्मी सपनों और झुलसे हुए अरमानों को सीनों में समेट कर चिताओं की भेंट चढ़ रहे हैं। हम एक खुर्दबीनी अल्पसंख्यक समुदाय ठगाठगी में व्यस्त राजनेताओं द्वारा छलित सन्तोषी के शब्दों में अपनी ही 'नियति की रील' देख रहे हैं।

10. कहानी प्रथमपुरुष आत्मकथात्मक शैली में है। मुख्य पात्र अपनी व्यथा कथा के तार स्वयं छेड़ देता है, यह दूसरी बात है कि सुन कर हमारे मानस के तार भी अकस्मात् बज उठते हैं।

11. कहानीकार च्योंकि समकालीन हिन्दी कविता का एक सिद्धहस्त कवि है अतः चित्रण शक्ति, भीतरी आक्रोश एवं व्यंग्य, अन्य भाषाओं के शब्द प्रयोग और सब से अधिक

आकर्षक कश्मीरी रंग (कश्मीरियत) पढ़ने वाले को निस्सन्देह मोह लेता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानीकार हमारे पारिवारिक जीवन में घुस कर हमें हमारे वजूद का एहसास दिला रहा है।

12. सादगी और सच्चाई इस कहानी को विस्थापित की अन्तरात्मा के साथ जोड़ देती है । हमारा अनुभूत सत्य हमारी आँखों के सामने साकार हो उठता है। निस्सन्देह यह कहानी हमें सुला नहीं देती है रुला देती है।
13. 'सौतेले शहर ' शब्द प्रयोग कुछ अवांछित और अप्रासंगिक सा लगता है। आज इस शहर के मूल निवासियों का भविष्य भी अधर में लटका है। बेकारी और बेरोज़गारी ने यहाँ के लोगों को भी बेहाल कर दिया है।

हम विस्थापितों को अपना भविष्य पूरे हिन्दुस्तान में तलाशना होगा और हम तलाश रहे हैं।

15 मार्च, 2003 ई0

***

'आँधी शरद की'

डॉ0 रूपकृष्ण भट्ट

(हिन्दी अनुवादक – प्यारे हताश)

विमर्श

कहानीकार श्री रूपकृष्ण भट्ट का 'हरदॅवाव' शीर्षक से ग्यारह कश्मीरी कहानियों का एक संग्रह सन् 2001 ई0 में कश्मीर कल्चरल ट्रस्ट (दिल्ली) की ओर से प्रकाशित हुआ। कहानियाँ प्रमुख रूप से विस्थापन की दुखद अश्रुसिक्त भवानुभूतियों से जुड़ी हैं। इन कहानियों में मूख इतिहास मुखर हो उठा है।

श्री प्यारे हताश ने 'हरदॅ वाव' में संगृहीत ग्याह कहानियों का भाषानुवाद हिन्दी में किया और इन रचनाओं के साथ रूपकृष्ण की चार अन्य कहानियाँ – 'साहब', 'मोबाइल नम्बर', 'शफ़ा' तथा 'इन्सान' – अनुवाद करके जोड़ दी। इस प्रकार कहानीकार की पन्द्रह कश्मीरी कहानियों का हिन्दी भाषानुवाद 'आन्धी शरद की' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

o o o

इन कहानियों को हिन्दी में लाने की बहुत ज़रूरत थी। हिन्दी भाषा–भाषी कश्मीरी कहानी के विकासोन्मुख स्वरूप से परिचित हो जाये – इस दृष्टि से अनूदित रचनाओं का अपना विशेष महत्त्व है। इतिहास के दुर्घटनाग्रस्त होने के परिणाम स्वरूप कश्मीरी कहानीकार की सोच पर क्या प्रभाव पड़ा और किस प्रकार अनुभूत सत्य कहानी का विषय बन गया – इस की सम्यक् जानकारी इन कहानियों के द्वारा प्राप्त होती हैं । स्वयं कहानीकार रूपकृष्ण भट्ट भी इस भीषण

स्थिति का शिकार होकर घर से बेघर हुए हैं। यह उनका अनुभूत सत्य है । इस विष को पीने और पचाने के लिये वे स्वयं विवश हुए हैं। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का इस अविश्वसनीय यथार्थ से प्रभावित हो उठना स्वाभाविक था। वस्तुतः साहित्यकार अपने युग की पहचान कराता है। वह न केवल अपने रचना संसार के प्रति ईमानदार होता है अपितु मानवीय रिश्तों के बदलते मूल्यों के प्रति भी सचेत रहता है। वह जिस स्थिति में जीने और मरने के लिये विवश होता है उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव उसकी सृजन साधना पर अवश्य पड़ता है। आज का संवेदनशील साहित्यकार इतिहास की सचाई को बिना 'मेकअप' के सर्जन के ताने–बाने में पिरो देता है और रचना समय की पहचान बन कर ज़ेह्न के द्वार पर दस्तक देती है। समकालीन कहानीकार विभिन्न प्रयोगात्मक स्थितियों से गुज़रते हुए ख़ालिस एक भावानुभूति अथवा जीवन के एक घनीभूत क्षण को कहानी के संक्षिप्त कलेवर में प्रस्तुत करता है। प्रोफ़ेसर हरिकृष्ण कौल एवं डॉ0 आर० एल० 'शान्त' के साथ–साथ आज कश्मीरी भाषा के कहानीकारों में मक्खन लाल पण्डिता ('करनॅ फ्युर', 'गिरदाब') एवं डॉ0 रूपकृष्ण भट्ट की कहानियाँ भी काफ़ी चर्चित रही है।

o o o

कहानीकार रूपकृष्ण भट्ट अपने वर्तमान के प्रति पर्याप्त सचेत हैं। बुद्धिजीवी होने के कारण वह हर घटित होने वाली घटना/दुर्घटना की मानसिक प्रतिक्रिया को तर्क की तुला पर तौल कर कल्पना के सहारे कहानी के माध्यम से व्यक्त करता है।

'भाग्यवान' शीर्षक से लिखी कहानी मानव सम्बन्धों पर गहराई के साथ सोचने के लिये विवश करती है। परस्पर के रिश्तों में यदि प्रेम पलता है तो आशायें जगती हैं, पनपती हैं, फलित होती है लेकिन यदि प्रेम औपचारिकता निबाहने का रूप ग्रहण करता है तो घायल हृदय, तड़प उठता है। यही तड़प विस्थापित पोशनाथ को अधीर कर देती है।

यही वह स्थिति है जो कहानीकार मक्खन लाल पण्डिता की प्रसिद्ध कहानी 'करनॅ फ्युर' में देखने को मिलती है।

o o o

'अतापता' शीर्षक कहानी एक विशिष्ट विस्थापित व्यक्ति की मानसिक स्थिति का हृदयद्रावक दृश्य प्रस्तुत करती है। उसे लग रहा है कि वह अपनी पहचान खो चुका है। रोशन लाल अपने खाये हुए कल की याद में आज का दिन गुज़ारना चाहता है लेकिन रह रह कर यादें उसके अस्तित्व को ही हिला के रख देती हैं।

o o o

'फ़ारूक़ का हेण्डस अप' कहानी आतंकी हाहाकार से जुड़ी एक सत्य कथा प्रतीत होती है। ज़ेबा एक निर्दोष सहज प्रकृति की महिला है जो आज भी गाँव के एक पण्डित पड़ौसी से पुत्रवत् स्नेह रखती है। उसे क्या मालूम कि विश्व स्तर पर चलाये जाने वाले राजनीतिक षड्यन्त्र ने किस प्रकार आज कश्मीरियत को दाग़दार बना दिया है। कहानी एक मुलाक़ात से जुड़ी है, पुरानी यादें बरबस मानस पटल पर बिजली के समान कौन्ध उठती हैं और वर्तमान – रूह तड़पा देने वाला वर्तमान खण्डित मानव मूल्यों के सामने एक नहीं, अनेक प्रश्न चिह्न लगाकर रक्तस्राव दिखाई दे रहा है। घटना एक ऐतिहासिक दुर्घटना को रेखांकित करती हुई संकटग्रस्त मानव अस्तित्व को झकझोर डालती है।

o o o

'रचना' शीर्षक से लिखी कहानी दफ़्तरी रिश्तों से जुड़ी आत्म–विश्लेषण प्रधान एक लघु रचना है जिसमें अनुभूत सत्य को कागज़ पर उतारने का प्रयास किया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से कहानीकार पुरुष प्रकृति पर चोट करते हुए ऑफ़िस की दुनिया और निजी दुनिया में सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता को रेखांकित

करते हैं।

'आन्धी शरद की' कहानी मूलतः दो परस्पर विपरीत मनःस्थितियों की कहानी है। कहानी एक पण्डित परिवार के विस्थापन से जुड़ी है। आज भी उनकी मुसलमान पड़ौसी महिला ज़ॉन दयद उनकी याद में तड़प रही है और अपने भोगे हुए जीवन की मधुर स्मृतियों के सहारे जीने का उपक्रम कर रही है और बहू पड़ोसी देश द्वारा पोषित आतंकी माहौल में साँसे लेकर सपनों की दुनिया में आत्मसन्तोष को तलाश रही है। नई पीढ़ी की इस सोच पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए । ज़िन्दगी का यथार्थ है – बीभत्स, कडुआ और असहनीय । रिश्तों में दरार पड़ गई है और इंसानी सोच दानवी शिकंजे में फंसकर बेहाल हो चुका है।

o o o

'आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई कहानी 'उसकी बात' वस्तुतः एक युवा मानस की व्यथा वेदना, पराजय बोध और अनिश्चयता से जुड़ी मनोविश्लेषण प्रधान रचना है।

o o o

'जवाँमर्ग अरमान' एक व्यंग्य प्रधान रचना है जिसमें सर्वत्र आज के विवश मानव जीवन की बेबसी से उत्पन्न करुणा छाई हुई है। निज़ामे मुस्तफ़ा के दावेदार अपने ही देशबन्धुओं की निर्मम हत्या करके चले गये और पण्डित त्रिलोकनाथ, एक प्रतिष्ठित सज्जन अपनी माँ, पत्नी, दो बेटे और एक बेटी की हत्या होते देख 'त्रयबक्की' बन जाता है। वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और ज़िन्दगी उसके लिये बेमानी हो जाती है। वह पागलों की तरह अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में इधर उधर घूम घूम कर दिन व्यतीत कर रहा है। इतिहास के पन्नों पर यथार्थ अंकित हो जाता है और मानव के दानवी व्यवहार तथा पास पड़ौसियों की भयाक्रान्त चुप्पी परम्परागत विश्वासों पर कालिख पोत देती है। ज़िन्दगी का यह हादिसा निस्सन्देह आँसुओं से सना है और रिश्तों की पुख़्तगी पर सोचने के लिये विवश करता है। कहानी का

आकार अत्यन्त संक्षिप्त है। कहानी का उत्तरार्द्ध आज़ाद देश के चुनावी मायाजाल से जुड़ा है और नेताजी 'डाकूभैया' चुनावी अखाड़े में उतर कर ज़ोर आज़मा रहे हैं, यही आज की हकीक़त है।

o o o

'मुजाहिद साहब' आतंकी भय और प्रकोप से जुड़ी एक अत्यन्त सुन्दर मनोविश्लेषण प्रधान रचना है। बन्दूक के भय ने न केवल कश्मीरियों के होंठ सी लिये हैं अपितु आत्मविश्वास भी उनसे छीन लिया है। वे एक तरह से नरपंगु बन कर रह गये हैं । आतंकी की आत्मलिप्सा न केवल बीभत्स है अपितु घृणा योग्य भी है। बदले हुए माहौल में आदमी की आदमियत इस हद तक निष्क्रिय हो जायेगी शायद किसी को भी इसका अनुमान तक नहीं था। मनोविश्लेषण की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

o o o

ऐतिहासिक सत्य पर आधारित ' पर्वत के उस पार का सपना' कहानी आतंकी हाहाकार से जुड़ी मुजाहिदों के क्रूर व्यवहार की एक दर्दनाक तस्वीर पेश करती है। इस कहानी का आकर्षण भयाक्रान्त मनोविश्लेषण में देखने को मिलता है। आतंकी माहौल में हर वस्तु के प्रति शंकालु हो उठना स्वाभाविक है। आज का कहानीकार अपने भोगे हुए यथार्थ के साथ गहराई में जुड़ा हुआ है। वह साहित्य को जीवन का पर्याय मान कर पाठक को परिवेश के प्रति सचेत करते हुए बदलते मानव मूल्यों पर कस कर प्रहार करते हैं। मंच पर क्या हो रहा है यह उतना आवश्यक नही जितना पर्दे के पीछे चल रहे षड्यन्त्र को पहचान कर उसके प्रति सावधान होने की आवश्यकता है।

o o o

पारिवारिक विघटन, बिखराव और रिश्तों की निरर्थकता को लेकर 'जिम्मी, जानी और लाला सॉब' शीर्षक कहानी लिखी गई है। यह एक चिन्तन प्रधान विचारोत्तेजक रचना है। यह कहानी दायित्व–

बोध से जुड़ी है। बुजुर्गों के प्रति क्या हमारा कोई दायित्व है ? समकालीन जीवन के दायित्व हीन व्यवहार प्रक्रिया पर चोट करते हुए इंसानी रिश्तों में आये हुए बदलाव को यथार्थ की आधारभूमि पर बड़ी खूबी के साथ पेश किया गया है। कहानी व्यंग्य के तेज़ नश्तर से हमारे मन–मस्तिष्क को चीर कर रक्त स्राव बना देती है । इसे यदि समस्या–प्रधान कहानी कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा।

'तुम्हें भूला नहीं हूँ' शीर्षक कहानी को कहानी कहने में मुझे संकोच हो रहा है । यह वास्तव में संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया आत्मभिव्यक्ति प्रधान शोक पत्र है।

'साहब' कहानी एक सत्यकथा प्रतीत हो रही है । सेवा निवृत्त होने के बाद साहब लोग राजसी ठाठ बाट से वंचित होने के कारण न केवल श्रीहीन हो जाते हैं अपितु शिथिल भी पड़ जाते हैं।

इन्सान बन कर जीना और मानवता के सिद्धान्तों पर चलना महानतम साधना है, बस इसी लक्ष्य और उद्देश्य को लेकर 'इन्सान' कहानी लिखी गई है। आज के इस आतंकी दौर में जहाँ जहादी जनूँन सिर चढ़ कर बोल रहा है इन्सानी रिश्तों की पुनर्व्याख्या करना सामाजिक स्वास्थ्य के लिये उपयोगी सिद्ध होगा। मूलतः हम सब सामाजिक प्राणी हैं।

o o o

विस्थापन के बाद बड़े बूढ़ों का सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना मुश्किल हो रहा है। परिवार की अवधारणा (concept) ही बदल गई है। आतंक की आँधी किस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक साथ बहा कर ले जाती है और विस्थापन –शिविर में जीवन जीना किस प्रकार नरक भोगने से कम नहीं है – आदि विचारणीय मुद्दों को लेकर 'शफ़ा' कहानी लिखी गई है। बहू, बहू नहीं यमदूतिका बन गई है। विघटित मानव मूल्यों की करुण दास्तान कहानी के माध्यम से मुखर हो उठी है।

तक़दीर जब सुधर जाती है तो तदबीर नई राहें तलाशने के हेतु प्रेरित करती है। इस देश में उच्च–तकनीकी शिक्षा प्राप्त नौजवान भी नौकरी की तलाश में दर–दर भटकने के लिये विवश हो रहे हैं और यह स्थिति उन्हें देश त्यागने के लिये मजबूर करती है। बुद्धिजीवी वर्ग का इस प्रकार देश त्याग स्वयं इस देश के लिये घातक सिद्ध हो रहा है । पृथ्वीनाथ जी ने कभी सपने में भी यह सोचा न था कि बस यात्रा के दौरान एक सम्भ्रान्त महिला से हुई भेंट आशु की नौकरी का कारण बन जायेगी। 'मोबाइल नम्बर' शीर्षक कहानी विस्थापित पृथ्वीनाथ के पारिवारिक जीवन के संकट को उसकी समस्त विवशताओं के साथ यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह को पढ़ कर विज्ञ पाठक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अनेक अन्य बिन्दुओं पर भी विचार कर सकते हैं।

श्री रूपकृष्ण भट्ट समकलीन कश्मीरी कहानी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे अपने युग और युग के यथार्थ से जुड़े हैं। विस्थापित समाज के दुर्घटनाग्रस्त जीवन ने उन्हें मानवीय रिश्तों पर पुनः सोचने के लिये विवश किया है। नैतिक मूल्यों के बदलाव, दायित्वहीन जीवन जीने की विवशता और इन्सानी रिश्तों के बिखराव पर उन्होंने अपनी कहानियों में पात्रों के पारस्परिक व्यवहार एवं क्रिया–कलाप द्वारा सम्यक् प्रकाश डाला है।

श्री प्यारे हताश जी ने हिन्दी में अनुवाद करते समय मूल स्वरूप के आकर्षण को सुरक्षित रखने का यथासम्भव प्रयास किया है। उन्हें अनुवाद करने का पर्याप्त अनुभव है। प्रोफ़ेसर ओमकार कौल के पुरस्कृत हिन्दी कहानी संग्रह 'मुलाकात' का उन्होंने कश्मीरी भाषा में 'मुलाकात' शीर्षक से अनुवाद किया है जो 2002 ई0 में प्रकाशित हुआ। 'शानि पंजाब' शीर्षक से पंजाबी भाषा की चुनी हुई कहानियों का कश्मीरी अनुवाद भी डॉ0 रत्न तलाशी के साथ प्यारे हताश ने किया है। अंग्रेज़ी भाषा में लिखित डॉ0 राधाकृष्णन् (भूतपूर्व राष्ट्रपति) के जीवन और दर्शन से सम्बन्धित पुस्तक का कश्मीरी अनुवाद भी

सफलता पूर्वक हताश जी ने किया है। स्वर्गीय सियारामशरण गुप्त के काव्य एवं जीवनी से सम्बन्धित पुस्तक का कश्मीरी अनुवाद भी उन्होंने किया है। प्रस्तुत प्रयास हिन्दी पाठक के लिये उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है। कम से कम हिन्दी पाठक हमारे संकट ग्रस्त जीवन की विवशताओं को पहचान कर इतिहास की ट्रेजड़ी से अवगत होगा।

फरवरी 27 , 2004.

अंग्रेज़ी भाषा में लिखित

Mysticism Across Cultures

रहस्यवाद : संस्कृतियों के आरपार

(चुने हुए कवियों और सन्तों का अध्ययन)

लेखकः प्रो० ए० एन० धर

(प्रकाशन वर्ष 2002 ई० कुल पृष्ठसंख्या 206)

पुस्तक समीक्षा

माननीय लेखक ने पुस्तक को समर्पित किया है –

अपने माता–पिता के नाम तथा
पवित्रित कश्मीर घाटी को
जो सन्तों और तत्त्व चिन्तकों की
साधना भूमि रही है ।

अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गई प्रस्तुत रचना पूर्व और पश्चिम के रहस्यवादी तत्त्व चिन्तकों एवं कवियों पर डा० धर द्वारा लिखे गये निबन्धों का संग्रह है।

अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के एक अनुभवी विद्वान एवं शिक्षक प्रोफ़ेसर जी० के० दास ने पुस्तक की भूमिका लिखी है । गागर में सागर भर दिया है। अपनी बात समाप्त करते हुए लिखते हैं :–

'Any reader will find material in it to read and enjoy. With the publcation of this book Professor Dhar shows that the Indian schoalr can do intellectual work comparable in merit to that of a mature scholar living a rewarding life in any part of the world.' [1]

---

1. 'Mysticism Across Cultures' - Foreword - Page ix

प्रोफ़ेसर धर की रचनात्मक प्रतिभा पर यह एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है।

पुस्तक की विषय सूची पर विचार करने से पूर्व मैं प्रोफ़ेसर घर के व्यक्तित्व की एक विशिष्ट उपलब्धि की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ । इसका सीधा सम्बन्ध प्रस्तुत पुस्तक के वर्ण्य–विषय (the theme)के साथ है।

सेवा निवृत्त होने के पश्चात् अध्यात्म प्रकाश की अद्भुत किरण मुझे धर साहब के व्यक्तित्व में दिखाई दी। अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के एक परिश्रमी शिक्षक प्रो० धर स्वयं एक तत्त्व चिन्तक रहस्योन्मुखी हैं। परम ब्रह्म के निकट आने के हेतु साधनारत, दिव्यानन्द में लय होने के हेतु प्रयत्नशील । बब जी भगवान गोपीनाथ के परमभक्त, मेरे गुरु भाई, एक बहुत अच्छे भक्त कवि और इससे भी बढ़कर ह्रदय क़ी तारों को झंकृत कराने वाले – गायक ।

'द्वद चोम गलि गलि ज़न गूरि वानै गोपीनाथुन
लोल वोपद्योम
भगवान जीयस कोर म्य प्रणामय कृष्ण भगवान हय
सम्मुख गोम।'

'स्वमर्नु पूज़ा' आडियो कैसेट में यह लीला डॉ0 साहब ने ही अपने समधुर कंठ में रिकार्ड करावाई है।

भक्त कवि के रूप में धर साहब द्वारा लिखित 91 भजनों और लीलाओं का संकलन 'दर्शन' शीर्षक से सन् 1993 ई० में 'उत्पल प्रकाशन' शकरपुर, दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

अतः 'घायल की गति घायल जाने ' स्वयं जिन रहस्यमयी स्थितियों से धर साहब गुज़र रहे है या जो रूहानी तजुर्बे, आध्यात्मिक अनुभव स्वयं उन्हें प्राप्त हुए हैं या हो रहे हैं – पूर्व और पश्चिम के प्रतिष्ठित रहस्यवादी कवियों को समझने तथा उनकी सर्जन प्रतिभा के

साथ न्याय करने में इन निजी अनुभवों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही होगी।

आरम्भ में ही धर साहब की एक और विशेष उपलब्धि को रेखांकित करना चाहता हूँ । इसमें सन्देह नहीं कि धर साहब को अंग्रेज़ी भाषा पर असाधारण अधिकार है लेकिन इसका अभिप्राय कदापि यह नहीं कि वे अभिव्यक्ति को अपनी पण्डिताई (विद्वत्ता, पांडित्य) से बोझिल बना दे। अत्यन्त सरल, सहज, ग्राह्य, बोधगम्य एवं मर्म को छूने वाली अभिव्यक्ति । रहस्यवाद एक गूढ़ विषय है लेकिन इसको सुपाच्य बनाने में धर साहब की अभिव्यक्ति का बड़ा सहयोग रहा है। आपकी भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है।

कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि धर साहब को राष्ट्रीय स्तर पर किसी समाचार पत्र के लिये 'स्तम्भ लेखक'[1] के रूप में सक्रिय होना चाहिए। बड़ा हित होता पत्रकारिता का और देसी पोशाक पहने हुए अंग्रेज़ी रोब जमाने वाले पत्रकारों का।

'Mysticism - Across Cultures' नामक पुस्तक में 12 निबन्ध संगृहीत हैं। विषय रहस्यवाद – पूर्व और पश्चिम के दर्पण में। लेखक ने कश्मीरी साहित्य के प्रतिष्ठित रहस्यवादियों – ललद्यद, नुन्द ऋषि, शमस फ़कीर, मास्टर ज़िन्द कौल, स्वामी गोविन्द कौल तथा भवानी भाग्यवान पण्डित छः कश्मीरी कवियों के रचना संसार को निकट से निरख कर मौक्तिक कण समेट लिये हैं।

उस अद्भुत, अलौकिक, सर्वव्यापक, तत्त्व द्रष्टा अथवा त्रिकाल द्रष्टा, अजर, अमर, शाश्वत, कण–कण व्यापी परंब्रह्म को समझना अथवा उनकी अलौकिक गति को पहचानना सब के बस की बात नहीं। ज्ञानी तो ज्ञान के आधार पर, योगी योग साधना के बल पर और भक्त साधना का पथ अपना कर प्रिय मिलन के हेतु प्रयत्नशील रहता है।

1. a columnist.

यहाँ एक बात और कहना चाहता हूँ कि कश्मीरी सूफ़ी काव्य की अपनी विशेष सुगन्ध है जो भारत के अन्य क्षेत्रों में रचित सूफ़ी काव्य में कहीं नहीं मिलती ।

शमस फ़क़ीर, अहद ज़रगर और समद मीर को पढ़ कर मैंने देखा कि समन्वय की अद्भुत शक्ति है इन में। गान्धी जी को वह किरण बहुत बाद मे दिखाई दी जिसकी द्युति से हमारे सूफ़ी कवियों का रचना संसार शोभायमान है। वेदान्त, शैवदर्शन, एवं वैष्णव भक्ति का अद्भुत मेल हुआ है इस्लामी तसव्वुफ़ के साथ जिसे कश्मीर की मिट्टी की सुगन्ध महका रही है। शमस फ़कीर के शब्दों में :–

' सोपुन ज़ाग्रथ तुरिया सुशुफ ज़गतस फ्यूरुस इकबॉऽलिये
यछ़ा पछ़ा लोल बा पूज़ा यह ज़ल दॉनि दिच़मस न्यवालिये
ओम् शमुरॉविथ शमश फ़कीर छु प्रॉविथ ज़ीवुई करिम कीवॉलिये
असत ज़ॉलिथ सत्संग पालिथ राज़ होंज़ संज़ि ताज़ॅ मोख्त् मॉलिये ।'[1]

डॉ० साहब की पुस्तक में उपरोक्त कश्मीरी भक्त अथवा सूफ़ी कवियों के रचना संसार की उपलब्धियों पर संतुलित टिप्पणियाँ पढ़ कर मुझे सच मानिये, कश्मीरी होने का गर्व हो रहा है। अपनी कश्मीरियत पर इतरा उठता हूँ आप सब जानते हैं कि गुलकन्द कश्मीरी गुलाब की पतियों से बनता है और कश्मीरी गुलाब अपनी सुगन्ध के लिये विश्व प्रसिद्ध है।

o o o

लेखक ने अपनी पुस्तक को बड़ा सुन्दर जैकट पहनाया है। 'कामायनी' के चिन्ता सर्ग की पहली चतुष्पदी की याद आ रही है :–

' हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला के शीतल छाँह,

1. 'कॉशिर सूफ़ी शॉयिरी'– भाग–1, सम्पादक मोतीलाल साक़ी जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – पृ० 423

एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह !

बेहद हसीन सरसब्ज़ वादियों में हम विस्थापन के बाद इस प्रलय प्रवाह को ही देख रहे हैं, न केवल देख रहे हैं, बल्कि झेल रहे हैं और साक्षी हैं इस हिमगिरि के हिमाच्छादित उत्तुंग शिखर। गुलपोश वादियाँ श्रीहीन होकर यकबस्तः हो गई है और पर्वत शिखरों पर बर्फ़ न केवल जम गई है बल्कि ठिठुर के रह गई हैं ।

o o o

पुस्तक में संगृहीत प्रथम रचना का शीर्षक है – Introduction अर्थात् परिचय। लेखक महोदय ने अपनी विवेक बुद्धि से काम लेकर रहस्यवाद के आधारभूत तत्त्वों पर प्रकाश डाला है अथवा उन्हें रेखांकित किया है –

1- Man's direct experience with Divine.
2- Direct personal communion with the Divine.
3- Soul's encounter with the Diviine
4- Union of the Soul with the Divine as the goal of Spiritual life.
5- Man's inward transformation, leading to the realization of the Self.

तथा और भी बहुत कुछ ।

Wiliam James, S. K. Ghose, Caroline Spurgeon, Saiyid A. A. Rizvi, Ernst Cassirer, E.J. Oliver इत्यादि विद्वानों के विद्वता पूर्ण तथ्य कथनों से लेखक ने रहस्यवाद के आधारभूत सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है। अंग्रेज़ी साहित्य के विद्वान से तो यही आशा की जा सकती है और यह सराहनीय भी है।

लेकिन.... जी हाँ, लेकिन कितना अच्छा होता यदि कश्मीर की मिट्टी में पोशित किसी महान विद्वान को भी उदधृत किया जाता – अरे

हम तो उत्पलदेव (9वीं–10वीं शताब्दी, 'शिवस्तोत्रावली'), अभिनवगुप्त (10वीं शताब्दी, 'तंत्रालोक'), क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी, 'दशावतार चरित'), मङ्खक (12वीं शताब्दी, 'श्रीकंठ चरित') और जगद्धर भट्ट (14वीं शताब्दी, 'स्तुति कुसुमान्जलि') के वंशज हैं। यहाँ स्वर्गीय जानकीनाथ कौल 'कमल' भी जन्मे और प्रोफ़ेसर 'पुष्प' भी पुष्पित हुए हैं। पण्डित दीनाथनाथ यक्ष 'शास्त्री' इसी मिट्टी की पैदावार है और प्रोफ़ेसर बलजिन्नाथ पण्डित आज भी अध्यात्म और रहस्य के गलियारों में घूमते नज़र आते हैं, मानो मूक मुद्रा में लेखक से कह रहे हैं – हम भी तो खड़े हैं राहों में ।

o o o

लेखक महोदय के विचारानुसार पुस्तक में संगृहीत 'The Poetry of Shamas Faqir : Some observations' निबन्ध उनका सर्वश्रेष्ठ निबन्ध है।

मेरा विचार है कि 40 पृष्ठों पर लिखा 'Zinda Kaul's Smaran' - Part 1 : A Critical Reading of the Poems' निबन्ध इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ रचना (Beauty) है। यह निबन्ध अत्यन्त संतुलित, सारगर्भित, तार्किक, दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित तथा वैचारिक गरिमा से विभूषित है। अभिव्यक्ति सर्वजन सुलभ – पशमीने पर तिल की महीन कढ़ाई ।

मैं यहाँ संक्षेप में प्रो० धर तथा आप सब पाठक बन्धुओं का ध्यान छः बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ :–

1. ज़िन्द कौल पहले कश्मीरी हिन्दी कवि हैं जिनका हिन्दी काव्य संग्रह 'पत्र–पुष्प' शीर्षक से सन् 1941 ई० में कश्मीर मरकनटाइल प्रेस, श्रीनगर से प्रकाशित हुआ है। यह घाटी में प्रकाशित पहला हिन्दी काव्य–संग्रह है । मूल्य था 2 आने (12 नये पैसे)।

2. ज़िन्द कौल फ़ारसी और उर्दू में भी 'साबित' कविनाम से कविताएँ लिखते थे। जनवरी सन् 1966 ई० में श्री अर्जुन नाथ रैणा ने मास्टर जी की उर्दू और फ़ारसी कविताओं का संग्रह 'दीवाने साबित' शीर्षक से प्रकाशित कराया।

3. ज़िन्द कौल ने अत्यन्त अल्पकाल के लिये ही कश्मीरी में कविताएँ लिखी हैं। सन् 1942 ई० से 1954–55 ई० तक। केवल 13–14 वर्ष की कालावधि ही उनके कश्मीरी काव्य लेखन से जुड़ी हैं।

4. 'लो–लो' वस्तुतः लोकगीतों की एक शैली विशेष है जिसे परवर्ती युग में कश्मीरी कवियों ने अपनी रचनाओं के मिज़ाज के अनुकूल प्रयोग में लाया है।

   यह शब्द वस्तुतः हर्ष, उल्लास, प्रसन्नता, आश्चर्य और उपलब्धि का द्योतक शब्द है और लोक मानस द्वारा गढ़ा हुआ है। आरम्भ में कश्मीरी लोकगीतों में इसका प्रयोग सर्वाधिक हुआ है और परवर्ती युग में यही शब्द प्रतिष्ठित कवियों की रचनाओं में लोक रंग को गहराने के हेतु प्रयोग में लाया जाने लगा। मास्टर जी की रचनाओं में भी यदि इस शब्द को लोक मानस के साथ जोड़ कर देखा जाये तो रहस्योद्घाटन की सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी।

5. सन् 1924 ई० में राज्य के पुरातत्त्व एवं अनुसन्धान विभाग में मास्टर जी की नियुक्ति शोध सहायक (Research Assistant) के रूप में हुई सर्वेक्षक (Surveyor) के रूप में नहीं। फिर सचिवालय में कुछ समय के लिये प्रचार विभाग (Publicity Deptt) में अनुवादक के रूप में काम करते रहे।

6. मास्टर जी को बालकृष्ण अथवा गोपियों के रसिया बालम से कोई विशेष मोह नहीं, उन्हें गीता के कृष्ण ने मोह लिया

है। स्वयं मास्टर जी कर्म सिद्धान्त पर विश्वास रखते थे। जीवन को सुन्दर बनाने के लिये उन्होंने कर्म की महत्ता को स्वीकारा है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय तीन में श्लोक 8 पर ध्यान देने की आवश्यकता है :–

'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।

(तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए स्वधर्म कर्म रूप को कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म न करने से शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा ।)

और मास्टर जी लिखते हैं :–

" अरज़नस दिथ आज्ञा 'बद दिल मॅं बन थोद वथ तुॅं लड़।
कासिना असि दीनता, पस्ती हचर श्रीकृष्ण देव।'
यिम नुॅ वरतावस अनन गीतायि हुन्द अख ओड़ श्लोक
लाभ क्या थ्यकनावनै लूकन अगर श्री कृष्ण देव।"

प्रोफ़ेसर धर की अधोलिखित स्वीकारोक्तियों को पढ़ कर एक बार फिर मुझे कश्मीरी होने का गर्व महसूस हो रहा है :–

1. 'An outstanding Kashmir Poet : his Poetic genius really flowered in his native language.' page 82

2. 'Masterji - Saint, Scholar, Poet, Teacher, Writer all fused into one.' page 84

3. 'Though Zinda Kaul's Poems look largely simple they do pose a challenge to the readers' understanding.' page 85

4. 'It is through the Practice of love alone that man can attain his Salvation.' page 102

o o o

स्वामी गोविन्द कौल और शमसफ़कीर : Affinities as Mystical Poets' निबन्ध वस्तुतः एक शोध निबन्ध है। स्वामी गोविन्द कौल पर आज तक बहुत कम लिखा गया है। कवि के मरणोपरान्त प्रकाशित 'गोविन्द अमृत' (1975 ई०) की चर्चा भी आज तक गम्भीरता के साथ नहीं हुई है। स्वामी गोविन्द कौल की गहन रहस्यानुभूति, अद्‌भुत के साक्षात्कार की उत्कट इच्छा, इच्छापूर्ति के हेतु कठिन साधना–पथ का अनुसरण और नित नये अनुभवों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति निस्सन्देह स्वर्गीय भक्तकवि के साधानात्मक जीवन को महिमा मंडित कर देती है। वेदान्त का तार्किक चिन्तन और तसव्वुफ़ के साधना पथ की मधुरिमा (माधुर्य / लोल) हमें एक साथ गोविन्द कौल की रचनाओं में देखने को मिलती है। इसमें कोई सन्देह नहीं ।

डा० धर ने दो शब्द–खण्ड़ों के माध्यम से गोविन्द कौल के रचना संसार को विशिष्टता प्रदान की –

' the poems sing of the pain of separation and of the joy of union' *(Page 124)*

स्वामी गोविन्द कौल एक पहुँचे हुए साधक थे। दिव्यानुभूति एवं अन्तः प्रकाश की अदभुत ज्योति से उन का मानस जगमगा रहा था अतः कविता उनके स्वानुभूत सत्य को लेकर गूढ़ रहस्यों को उजागर करती हुई अमरतत्व का वरदान पा गई।

' हयोर कुन नज़र कर, लोलॅ सूत्य मनॅुय बर
नेरिय पानय शर, बर मुचराव ज़ुवो।
अछ़ बर दारि त्रोपराव, यिय वुछख तिय व्यपराव।'

' सू सू चुॅ श्रो'पराव, हम सू त्राव ज़ुवो।
बेह ईकांतुॅ जाये, सूत्य प्रेमुॅ तुॅ मायि
बऽडरिथ श्रद्धाये, स्वर सुय नाव ज़ुवो।'

(पृ० 129)

अथवा

' हृदयिकि दरवाजु अछ़ कर परवाज़
छुय वज़न साज़ ज़ीरु बम तुॅ लोलो ।

' हर दमुॅ होश थव सॅरु कर' यि आवाज़
अथ मंज़ छि ज़ुॅ आलम तुॅ लोलो।
साऽल ला मकानन कर बन च्रुॅ शाहबाज़,
हंसन सॅूत्य, दि कदम तुॅ लालो।'

(पृ0 154)

इसमें सन्देह नहीं कि शमसफक़ीर एक बहुत बड़े सूफ़ी शाइर हैं जिनके जीवन और कृतित्व पर प्रत्येक कश्मीरी को गर्व होना चाहिये। गोविन्द कौल को शम्स फ़क़ीर के समानान्तर प्रस्तुत करने में कोई आपत्ति नहीं लेकिन इस बात का ख़तरा ज़रूर है कि कहीं मुहम्मद सिद्दीक भट्ट उर्फ़ शम्सफ़कीर का यारे जानाँ हर गोशे में इश्क की ज़बरदस्त तपिश के साथ जल्वःगर न हो जाये। तराज़ू के दो पलड़ों में थोड़ा बहुत सन्तुलन तो रहना चाहिए और डॉ० धर ने उसी सन्तुलन को बनाये रखने का भरसक प्रयास किया है।

'ॲशकु रोस इंसान बतर अज़ गावो
कथ क्युत दुनियाहस आवो लो
आशिकन मंज़ बाग मन छिवुनावो
वन्तो अथि क्या आवो लो–
क्यॅह नय ओस तय कति सनऽआवो
तथ वनतुॅ क्या स्पुद नावो लो ।
तथ सूत्यि शम्सफ़क़ीर तनमन मिलावो
वन्तो अथि क्या आवो लो।'

(कॉशिर सूफ़ी शाइरी' भग–1, –पृ0 351)

प्रस्तुत शोध निबन्ध दो खण्ड़ों में विभक्त है । द्वितीय खण्ड में दोनों कवियों सन्त स्वामी गोविन्द कौल एवं सूफ़ी कवि शम्स फ़क़ीर

की दो–दो रचनाएँ अंग्रेज़ी अनुवाद तथा लेखक की शोध टिप्पणियों के साथ प्रस्तुत की गई हैं। सन्त और सूफ़ी का यह मिलन अद्‌भुत है। डॉ० साहब के शब्दों में 'direct encounter with the Divine'(page-153) हालांकि शम्स फ़क़ीर रचनात्मक कौशल की दृष्टि से एक नहीं, दो नहीं कई क़दम आगे हैं।

'ज़ान मिलनाव भगवानस सूत्य' शम्स फ़क़ीर की एक बहुचर्चित रचना है। रचना पर विचार करने से पूर्व इसके कथ्य से भली भाँति परिचित होना आवश्यक है। ललद्यद, नुन्द ऋषि एवं शाहहमदान के सन्दर्भ–सूत्र ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करते हैं :–

'सोर्दुं बा'इ वदुना को'र पाऽन्य पानस
दिवुर मंगि क्या दिवॅरिवटस
ललि त्रोव ज़ल नोट मंज़ पोतॅुल्य खानस
ज़ान मिलॅुनाव भगवानस सॅूत्य।'

(कॉशिर सूफ़ी शाइरी' भग–1, –पृ0 344)

कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति है । प्राण, ज्ञान, आकाश, भगवान, पूज़ा, धर्म शास्त्र, ज़ल तो शुद्ध तत्सम (संस्कृत) शब्दवली है लेकिन पता नहीं क्यों शम्सफ़क़ीर को मेरे देवालय/शिवालय /शिवास्थान/शिवमन्दिर/शंकरधाम के लिये 'पोतॅुल्य खाना' से ज़्यादा बेहतर आदर सूचक शब्द खण्ड़ क्यों नहीं मिला ? मुझे लग रहा है कि सूफ़ी साधक का यह हल्का मज़ाक उस युग की ऐतिहासिक सचाई को ही उजागर करता है। लेकिन इसमें सन्देह नही कि शम्सफ़क़ीर कश्मीरी सूफ़ी कवियों में शीर्षस्थ स्थान के अधिकारी हैं। हमारे सांस्कृतिक वैभव के प्रकाश स्तम्भ और लेखक ने उसी संदर्भ में शम्सफ़क़ीर पर सम्यक् प्रकाश डाला है। सम्भवतः उऋण होने का सफल प्रयास किया है।

o o o

'तन मीज्य् सतग्वर तने म्य यार वुछ हनि हने।
सतग्वर दीवन बूज़ुम तऽम्य ध्यान पनुन सूज़ुम।
थोवुम सुय ब्राँठुकने म्य यार वुछ हनि हने।।
दूरन छु मारान ग्राये वुछि ह्यम ॲन्दरिमि राये।
वुछस तेलि यॅलि बने म्य यार वुछ हनि हने।।
('मन–पम्पोश' लीला–8 –पृ0 11)

भवानी 'भाग्यवान' पण्डित (भाग्यवान द्यद) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कश्मीरी रहस्योन्मुखी लीला काव्य के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखती है। 'मन–पम्पोश' (1998 ई०) के प्रकाशन के साथ ही दिव्यानुभूति प्राप्त कवयित्री की चर्चा साहित्य क्षेत्रों में होने लगी। डॉ० धर ने एक स्वतन्त्र संक्षिप्त लेख के अन्तर्गत इनकी सर्जनात्मक विभूतियों पर प्रकाश डाला है। ललद्यद एवं शम्सफ़क़ीर के चिन्तन का प्रभाव भाग्यवान द्यद की लीलाओं में देखने को मिलता है लेकिन इसके साथ ही साथ स्वामी गोविन्द कौल, जिन्हें वह अपना गुरु मानती हैं, की साधना प्रधान विचारधारा ने भी उन्हें पर्याप्त प्रभावित किया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाग्यवान द्यद पढ़ी लिखी नहीं हैं यद्यपि जीवन के स्कूल में दिव्यानुभव की कई डिग्रियाँ उनके पास थीं। उसी अनुभूत सत्य के आधार पर प्रेम, भक्ति और ज्ञान की त्रिवेणी अपनी लीलाओं में प्रवाहित करने की उन्होंने सफल चेष्टा की है। गृहस्थ जीवन के समस्त उत्तरदायित्व को निबाह कर भवानी द्यद 'तत्त' की खोज में अपने भीतर निहित दिव्य स्वरूप को टटोलने लगी और अन्त समय तक टटोलती रही। 'मन–पम्पोश' में संगृहीत 145 रचनाओं का अध्ययन करके उनके साधनात्मक जीवन के गुह्य रहस्यों को समझा जा सकता है क्योंकि जो कुछ उन्होंने कहा है वह वस्तुत: उनके अनुभूत सत्य से जुड़ा है।

o o o

'A Re appraisal of Lal Ded'

प्रस्तुत निबन्ध में डॉ० साहब ने उस समस्त सामग्री पर क्रम बद्ध रूप से प्रकाश डाला है जो ललद्यद के व्यक्तित्व, चिन्तन एवं कृतित्व से सम्बन्धित है । समय–समय पर विभिन्न विद्वानों ने ललद्यद पर विशेष कर लल्लेश्वरी के वाखों पर शोध परक काम किया है जो निस्सन्देह स्तुत्य है । इस दिशा में प्रो० रामनाथ कौल की रचना 'Kashmir's Mystic : Poetess Lal Ded alias Lalla Arifa' (प्रकाशन वर्ष 1999 ई०) ताज़ा/नूतन उपलब्धि है। डॉ० अमरनाथ धर ने लल्लेश्वरी पर हुए विवेचनात्मक अथवा विश्लेषणात्मक काम का जो क्रमबद्ध ब्योरा दिया है अनुसन्धान के क्षेत्र में उसका अपना विशेष महत्त्व है। यह तो शोधार्थी के लिये शोध सामग्री का उत्स (स्रोत, सोता) है।

इसके बाद धर साहब ने उन आलोचकों, चिन्तकों एवं विद्वानों पर चोट की है जो लल्लेश्वरी को जीवन के अन्तिम काल में धर्मान्तरित मानते हैं। डॉ० धर के अनुसार यह सही नहीं है। न ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है और न अन्य कोई प्रामाणिक साक्ष्य इसके पक्ष में कहीं मिलता है। वास्तव में जब एक शक्तिशाली संस्कृति किसी दूसरे सांस्कृतिक क्षेत्र पर छल और बल से हावी हो जाती है तो शक्ति प्रदर्शन के मद में वायवी कल्पनाएँ उन्मुक्त आकाश में उड़ान भरती हैं और साहित्यकाश इसका अपवाद नहीं हो सकता है।

कश्मीरी भाषा और साहित्य के साथ चन्द विदेशी विद्वानों ने अन्याय किया है चाहे वह जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन हो (Linguistic Survey of India') या सर रिचार्ड टेम्पल (The Word of Lalla) राजनीति से प्रेरित मधुरभाषी विदेशी विद्वानों की यह टोली बेहद चतुर थी। जान बूझ कर इन्होंने राख में चिनगारियाँ डाल दी हैं । चढ़ते सूर्य का नमन और अस्ताचल में विलीन हो रही रक्ताभ पर अश्रु प्रवाह – यही तो कूटनीति है।

स्वर्गीय प्रो० जियलाल कौल ने ललद्यद पर जो कार्य किया है

विशेष कर लल वाखों का पाठोलचन कर पाठ की प्रामाणिकता सिद्ध करने का जो प्रयास उन्होंने किया है उससे धर साहब काफ़ी प्रभावित हुए हैं अतः जियालाल कौल की विद्वत्ता को ख़ूब सराहा है।[1] लेखक के अनुसार लल्लेश्वरी योगिनी (तपस्विनी, योगाभ्यासिनी) है। कई वाखों में उनकी भूमिका उपदेशक की बन जाती है यह बड़ी कमज़ोर भूमिका है लेकिन अधिकाश वाखों में वह साधनारत योगिनी के रूप में ज्ञान के चक्षुओं से अद्भुत के रहस्य को जानने और पहचानने के हेतु प्रयत्नशील दिखाई देती है। सन्त और कवि की भूमिका वह एक साथ निबाह रही है। लेखक के शब्दों में :–

' The *Vaakhs* bear terstimony to *Lalla's* genius as a Saint and Poet in one." *page 179*

'Mysticism, across Cultures' में पूर्व और पश्चिम का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। Christian Mysticism पर विचार व्यक्त करते हुए लेखक ने 16वी शताब्दी के एक बहुचर्चित स्पैनिश रहस्यवादी St. John of the Cross की अंग्रेज़ी में अनूदित रचनाओं के आधार पर यूरोपीय रहस्यवाद की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। St. John of the Cross की प्रसिद्ध कविता 'Obscure Night of the Soul' जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद Arthur Symons ने किया है, पर लेखक ने सम्यक् प्रकाश डाला है। लेखक का मानना है कि 'directness and simplicity mark his style, at the same time, he is profound.' *(page 46)* 19वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि Coventry Patmore पर प्रस्तुत संग्रह में वस्तुतः एक शोध रपट दर्ज है। Patmroe भी मूलतः रहस्यवादी कवि हैं। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'The Angel in the House' तथा 'The Victories of Love' चर्चित रही हैं। यहाँ डॉ० साहब ने Patmroe के 'Psyche Odes पर गहराई से प्रकाश डाला है यद्यपि 'The Unknown Eros' के अन्तर्गत संगृहीत Odes की भी कहीं–कहीं चर्चा की है।

---

1. मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रोफेसर जियालाल कौल तथा पण्डित नन्दलाल कौल तालिब दोनों लल्लेश्वरी के वाखों के साथ न्याय करने में पूर्ण रूप से असफल रहे हैं।

Psyche Odes के नग्न यौन प्रदर्शन से मैं ज़रूर काँप उठा। लौकिक आधार पर अलौकिक तथ्य कथन अथवा प्रेम–वर्णन तो सूफियों के काव्य का भी प्रमुख गुण है लेकिन Spritual Marriage की बात तो पश्चिमी रहस्यवादियों की नूतन अनूभूति है। डॉ० साहब के शब्दों में – 'An important feature of mystical literature in general is that it celebrates divine love in terms of images drawn from earthly love. The concept of 'Spiritual marraiage' is significantly central to Christian mystical theology.'(पृ० 57) - लेखक को स्वयं इस बात का एहसास है कि –

' The reader may find it rather difficult to perceive the meaning underlying the sexual symbolism used in the poems. It is equally likely that he may find this Poetry: ' fleshly'.(पृ० 67)

वस्तुतः पश्चिमी रहस्यवादी काव्य की भी अपनी उपलब्धियाँ हैं और भारतीय पाठक को उस मिज़ाज से परिचित कराने का प्रयास विचाराधीन शोध–रपट में किया गया है ।

o o o

'Nund Rishi : A Brief Introduction' इस पुस्तक में संगृहीत लेखक द्वारा लिखित अन्तिम परिचयात्मक निबन्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि सहज़ानन्द ने अपनी अदभुत क्षमताओं से जनमानस को मोह लिया था। सन्त परम्परा में ऋषि–सम्प्रदाय को उन्होंने अध्यात्म के आधारभूत सिद्धान्तों के साथ जोड़ा और इसे महिमा मंडित किया। सहज़ानन्द अपने अनुभूत सत्य को श्रुकों (श्लोकों) के साँचे में बान्ध देते थे, शताब्दियों तक ये श्लोक मौखिक परम्परा में चलते रहे और इनमें पर्याप्त प्रक्षिप्त अंश जुड़ गये। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि सहज़ानन्द अपने सहजानुभव के आधार पर सत्यान्वेषण में जुट गये और उसे इस बात की बिल्कुल चिन्ता नहीं थी कि कौन उनके शिष्य हैं तथा किस धर्म, जात, वर्ग और सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। वह तो ईश

दरबार के अनन्योपासक हैं। आप उन्हें नुन्द र्योश कहें या शेख नूर उद्दीन वली, अल्मदारि कश्मीर कहें या हज़रत शेख – सहज़ानन्द के लिये यह सब नाम सहज हैं, ग्राहय हैं, स्तुत्य हैं। लेखक ने इन्हें अपने निबन्ध में मुख्य रूप से नुन्द र्योश नाम से ही सम्बोधित किया है। नुन्द अर्थात् 'नुन्दबोन' (अत्यन्त आकर्षक) मनमोहक । च्रार गाँव उनके नाम के साथ विशेष रूप से जुड़ गया है और हम सब जानते हैं इस्लाम धर्म पर दृढ़ आस्था रखने वाले स्वघोषित कर्नल मस्तगुल ने च्रार की क्या गत बनाई। च्रार के साथ–साथ नुन्द ऋशि चमर (च्यमरगोम), अनन्तनाग, बुमज़ू, मोख्तिमुल, पट्टन, हमच्चपुर (बीरू तहसील), दरिय ग्राम (बडगाम तहसील), अन्त में रुँपवुन (तहसील चाडूरा) जहाँ जीवन के अन्तिम सात वर्ष व्यतीत करके वे 842 हिजरी तदनुसार 1438 ई० में स्वर्ग सिधारे। लेखक के कथनानुसर :–

' He had the makings of a '*Rishi*' - a Sanskrit term of immense cultural significance, meaning a spiritual seer who models his life on the Vedic standards' - (पृ० 187-188)

लेखक ने नुन्द ऋषि के चन्द चुने हुए श्रुकों का अंग्रेज़ी पद्यानुवाद प्रस्तुत करते हुए बात स्पष्ट कर दी है कि वे 'wedded to spirituality and to the ideal of social service'. *(page189)*

अल्मदारि कश्मीर ने धर्मपरिवर्तन के अभियान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है – डॉ० धर की मान्यताओं पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मैं केवल शोधार्थियों के सम्मुख निवेदन करना चाहता हूँ कि इस विषय पर गहराई के साथ विचार किया जाये। इतिहास के सन्दर्भ में तथ्यों का पुनः परीक्षण आवश्यक है। यह भी जानना आवश्यक है कि नुन्द र्योश और सहज़ानन्द एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं अथवा दुर्घटनाग्रस्त इतिहास की ये दो अलग–अलग विभूतियाँ हैं।

लेखक के इस कथन से मैं सहमत हूँ कि सहज़ानन्द के श्रुकों में रहस्यात्मक अनुभूतियों की वह गहराई नहीं है जो लल्लेश्वरी

योगीश्वरी के वाखों में हमें देखने को मिलती है। लेकिन नुन्द ऋषि में उपदेशात्मकता एवं सर्वमंगल की भावना लल्लेश्वरी से कहीं अधिक प्रभावशाली एवं प्रेरणात्मक रही है। लेखक के शब्दों में :– ‘ the content of the Shrukhs is largely didactic the preachers tone being marked in the them’. *(page 190)* लेकिन यह बात सही है कि नुन्दऋषि के अधिकांश श्रुकों में आत्ममंथन, आत्मचिन्तन एवं आत्मपरीक्षण की विविध स्थितियों का सांकेतिक उल्लेख किया गया है जिसे लेखक ने – ’engaged in deep self-introspection’ *(page 193)* कहा है।

सत्यान्वेषी सहज़ानन्द का यह कथन कितना मार्मिक है जिसे लेखक ने उदधृत करके वस्तुतः नुन्द ऋषि के साधनात्मक जीवन के ध्येय को ही रेखांकित किया है :–

जुव नेरि ब्रोंठ लूभ नेरि पतॅु
गछन द्वन जॅु वतॅु तॅु पॅयि शुन्याकार
यि दिख ब्रोंठ ति यी पतॅु
बार खव्दाया पाप निवार ।।

(पृ0 195)

नुन्द ऋषि ने शैवमत की आधार भूमि से जुड़े विश्वासों, मान्यताओं, परम्पराओं, रीति रिवाजों एवं आचार विचार से बहुत कुछ ग्रहण किया है और अपने श्रुकों में बारीक तथ्यों के प्रकटीकरण के समय उन्हें व्यवहार में लाया है। अध्यात्म–पथ पर साधक के हेतु ये श्रुख निस्सन्देह प्रकाश स्तम्भ की भूमिका निबाहते हैं :–

सु म्यॅ निशे ब्व तस निशे
म्य तस निशे क़रार आव
नाहकै छोंड्डुम म्यॅ पर–दीशे
पनिने दीशे म्यॅ यार आव ।

(“कुलयात शेख–उल–आलम सं०–मोतीलाल साक़ी –पृ0 74)

लेखक के शब्दों में :–

'They have value for the spiritual aspirants across cultures and creeds - as moral sayings and as practical hints on treading the spiritual path.' *(page-199)*

अन्त में यह कहते हुए अपनी बात समाप्त कर दूँगा कि प्रस्तुत रचना (Mysticism : Across Cultures) डॉ० अमरनाथ धर के बौद्धिक मंथन का परिणाम है। एक अनुभवी बुद्धि जीवी के रूप में उन्होंने बड़ी सफलता के साथ अपने कर्तव्य कर्म को निबाहया है। हम सब जानते हैं कि शोध पथ पर हर समय आगे बढ़ने की सम्भावना होती है। यहाँ कोई भी कथन, निष्कर्ष या विचार वेद–वाक्य नहीं होता। अनुसंधित्सु (Researcher) काम आरम्भ करके वस्तुतः बड़े साहस का परिचय देता है।

एक पहुँचे हुए साधक के रूप में, अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के विद्वान के रूप में, एक भक्त कवि के रूप में, एक शोधार्थी के रूप में और सब से बड़ कर एक बुद्धिजीवी कश्मीरी के रूप में डॉ० धर का योगदान निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

30 अप्रैल, 2002 ई०

भक्त कवि प्राणनाथ भट्ट 'ग़रीब'–'भाई जी'

संजीवनी के दर्पण में

अध्यात्म चिन्तन, आत्ममंथन एवं साधनात्मक जीवन–निर्वाह के दृढ़ संकल्प पर आधारित रहस्योन्मुखी सन्त काव्य परम्परा का ऋषि–भूमि कश्मीर में अपना भव्य इतिहास है। यही हमारी सांस्कृतिक विरासत है जिस पर प्रत्येक तत्त्व चिन्तक बुद्धिजीवी अथवा अलौकिक आनन्द प्राप्ति हेतु साधनारत भक्तजन को गर्व होना चाहिए ।

विस्थापन के बाद कश्मीरी भक्ति काव्य की यह सम्पन्न परम्परा जो विपरीत परिस्थितियों में तनिक उपेक्षित रही, एक बार फिर जन–मानस को पूरी शक्ति और वेग के साथ झकझोरने लगी। यह हमारा रोज़ का अनुभव है कि सोये हुए आदमी की अपेक्षा जागे हुए आदमी को जगाना तनिक मुश्किल होता है। स्वर्गीय भवानी 'भाग्यवान' पंडित (मन–पम्पोश– 1998 ई०), स्वर्गीय श्री प्रेमनाथ कौल 'अर्पण' (कॉशिर भगवतगीता – 2001 ई०) स्वर्गीय निरंजननाथ सुमन (शॅशिकल – 1998 ई०) प्रोफ़ेसर अमरनाथ धर (दर्शुन – 1993 ई०) श्रीमती बिमला रैणा ('रे'श माल्युन म्योन', 1998 ई० तथा 'व्यथ मा छि शोंगिथ' –2003 ई०) श्रीमती गिरिजा कौल (गुरु दक्षणा–2002 ई०), श्री काशीनाथ बाग़वान (अछर गोंन्द – 2001 ई०) श्रीमती चन्द्रा डासी ('चन्द्रवाख'– 2002 ई०) स्वर्गीय श्री मधुसूदन राज़दान (माधुर्य गिरा – 2001 ई०), श्री सोमनाथ वीर (सतसंग – 2003 ई०), श्री बदरीनाथ अभिलाष (क्षमापोश – 2003 ई०), श्रीमती मोहिनी कौल (शुहुल नॉर–2002 ई०) श्री प्रेमनाथ 'प्रेम' (म्यॉनि सुमरन – 2001 ई०), श्रीमती राज दुलारी कदलबुजू 'मस्तानि' (मन पम्पोश, पुष्पांजलि, आत्मज़ान), श्री चमनलाल राज़दान (कंठपोश 2003 ई०) श्री रोशनलाल रोशन

(भावपोश – 2000 ई०) श्री प्रेमनाथ शाद (वंदना – 2002 ई०), श्री जवाहरलाल सरूर (शिवायि नमः ओम, 2002 ई०), तथा अन्य भक्त कवियों का योगदान ऐतिहासिक दृष्टि से अवश्य महत्त्वपूर्ण है परन्तु जिस योग साधक महापुरुष ने चिन्तन और सर्जन के इस क्षेत्र में हलचल पैदा की, वह हैं – आनन्दस्वामी प्राणनाथ भट्ट 'गरीब' जिन्हें श्रद्धालु भक्त जन 'भाई जी' के नाम से जानते हैं। भाईजी मूलतः पुलवामा ज़िले में स्थित मुरन गाँव के निवासी हैं। इस गाँव के निवासी कश्मीरी पण्डित अपनी बौद्धिक सम्पन्नता के कारण इतिहास प्रसिद्ध रहे हैं। कहते हैं इस गाँव पर देवी माँ – 'ब्रारि मॉज' की विशेष कृपा रही है। यहाँ देवी माँ स्थायी रूप से प्रतिष्ठापित हैं अतः श्रद्धालु भक्तजनों के लिए यह पावन तीर्थ स्थान सांस्कृतिक गौरव का प्रतीक चिह्न है। प्रकृति ने भी इस गाँव को अपनी श्री सम्पदा से पर्याप्त सुशोभित किया है।

सन् 1970 ई० में एम० ए० हिन्दी डिग्री प्राप्त करने के बाद सन् 1973 ई० में आपकी नियुक्ति राज्य के शिक्षा विभाग में अध्यापक के रूप में हुई और अपने जीवन के अनमोल वर्ष आपने अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ अध्यात्म चिन्तन में व्यतीत किये। आपने सन् 1973 ई० में कश्मीर विश्वविद्यालय से अंग्रज़ी साहित्य में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की और सन् 1979 में बी० एडी० की परीक्षा भी पास की।

सन्त होने के साथ–साथ भाईजी एक सर्जनात्मक कलाकार हैं। अल्पायु में ही आप काव्य–लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं और बुद्धिजीवी समाज का ध्यान आपकी ओर आकर्षित हुआ। यही उनकी काव्य साधना का प्रथम सोपान है।

द्वितीय सोपान पर आते–आते 'गरीब' साधना के तपोवन में तपानल से तपकर तपस्पूत हो चुके हैं। सब कुछ समेट कर वह बाहर से अपने भीतर प्रवेश करके अद्भुत को निहार रहे हैं। इस स्थिति में कवि, कवि नही रहता, ऋषि बन जाता है, भक्ति एवं श्रद्धा की पृष्ठभूमि

पर यह ऋषिरूप देवतुल्य है। सृजन के नाना रंगों में साधना की प्रखरता का मिश्रण एक स्वर्णिम अनुभूति का आभास कराती है। सर्जनात्मक कलाकार को हर समय इस बात के लिये सचेत रहना पड़ता है कि श्रद्धा–भक्ति और काव्य के मध्य सन्तुलन बना रहे जो रचना में स्वतः सौन्दर्य–कण बिखेर-देता है। भक्ति का आवश्यकता से अधिक हावी हो जाना काव्य साधना के हित में नहीं है। इस बात के लिये कलाकारों को सावधान रहना पड़ता है। वाल्मीकि, तुलसी, सूर, जायसी, परमानन्द, कृष्ण जू राज़दान, प्रकाशराम कुरगामी, विष्णु कौल व्योस, स्वामी गोविन्द कौल तथा अन्य अनेक भक्त कवियों ने इस सन्तुलन स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया है और 'भाईजी' में भी यह गुण विशेष रूप से देखने को मिलता है।

आनन्द स्वरूप प्राणनाथ भट्ट एवं कवि प्राणनाथ भट्ट 'गरीब' वस्तुतः एक ही व्यक्तित्व के दो फोटू–चित्र हैं । आज की शब्दावली में टेलीविजन के स्क्रीन पर अथवा कम्प्यूटर के मानीटर पर दो फ्लैश (कौंध, दमक)। एक साथ दो–दो भूमिकाएँ निबाहना बड़ा मुश्किल होता है और पहुँचे हुए साधक ही साधना के पथ का अनुसरण कर सर्जन की उर्वर भूमि में आनन्द/परमानन्द का बीज–वपन कर सकते हैं। 'भाईजी' इस भूमिका को पूरी सफलता के साथ निबाह रहे हैं।

साधना के तृतीय और अन्तिम सोपान पर आकर स्वामी जी पूर्ण लयावस्था में अपने इष्ट के साथ एकात्म होकर ज्ञान ज्योति से श्रद्धालु भक्त जनों के भीतर अन्धकार को मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं अब उनका लक्ष्य है – 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत ।।'

सन् 2000 ई० में भाईजी का लेज़र टाइप सेटिंग में 421 पृष्ठों का लीला और भजन संग्रह 'संजीवनी' शीर्षक से मीनाक्षी प्रिन्टर्स, नई दिल्ली से छप कर श्रद्धालु भक्तजनों के सम्मुख आया। इसका सम्पादन श्री चमनलाल रैणा जी ने किया है। संग्रह में 130 रचनाएँ

(भजन, लीलाएँ, वाख) संगृहीत हैं और इसके अतिरिक्त 'सुदामाचरित' 'गौरी स्तुति' एवं 'शिव महिम्नास्तोत्र' को कश्मीरी भाषा में काव्य रूप प्रदान करते हुए भक्तजनों की हितकामना से प्रेरित होकर उपलब्ध किया गया है। पुस्तक की साज–सज्जा अत्यंत सुन्दर और आकर्षक है। आवरण पृष्ठ भगवान अमरनाथ के ज्योतिर्लिंग से सुशोभित है। पक्षियों का जोड़ा बतियाती मुद्रा में उन पक्षी जोड़ों की याद दिलाता है जो स्वामी अमरनाथ की गुफ़ा पर श्रावण पूर्णमासी के दिन हज़ारों तीर्थ यात्रियों का मन मोह लेते हैं।

प्रस्तुत भजन–लीला संग्रह पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। एक भक्त कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा का अनमोल रत्न समझ कर इसे शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से परखा जाये और हंसबुद्धि के आधार पर इसकी उपलब्धियों पर विचार करते हुए भक्त काव्य के क्षेत्र में इसके स्थान को नियत किया जाय। यहाँ प्रमुख उद्देश्य होगा – कवि प्राणनाथ भट्ट की सर्जनात्मक प्रतिभा पर प्रकाश डालना। हमें ज्ञात है कि सर्जन की सम्भावनाएँ महान होती हैं । 'रामचरित मानस' 'सूरसागर', 'कामायनी', 'साकेत' तथा कश्मीरी में 'शिवलग्न' 'सुदामाचरित' 'रामवतार चर्स्यत' धार्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित होते हुए भी राष्ट्रीय स्तर पर महान साहित्यिक रचनाएँ मानी जाती हैं। इस का कारण यही है कि आस्थावान होते हुए भी इन कवियों ने सर्वप्रथम अपने कवि धर्म को निबहाया है – पूरी तन्मयता के साथ।'संजीवनी' भी इस दृष्टि से कश्मीरी भक्ति काव्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। 'गरीब' के रचना संसार के नाना रंग अपनी समस्त शोखियों के साथ इस रचना की विविध लीलाओं में ज्ल्वःगर हैं । कथ्य, भाषा, अलंकार, स्थानीय रंग, प्रतीक योजना, बिम्ब विधान सभी दृष्टियों से यह एक स्तरीय लीला संग्रह है।

दूसरी दृष्टि एक श्रद्धालु भक्त की प्रेमाश्रुसिक्त दृष्टि है जहाँ तर्क का कोई महत्त्व नहीं। प्रत्येक रंग में निहित अदृश्य रंग की छटा देखने को जी मचलता है। अपने साध्य के चरण कमलों पर नत मस्तक

होकर उनकी अमृतवाणी की अनलहक़ ध्वनि (अहं ब्रह्मस्मि) भीतर के समस्त प्रकोष्ठों में गूँजती है।

मेरा यह प्रयास होगा कि ऊपर वर्णित दोनों दृष्टियों में सन्तुलन स्थापित करते हुए मैं भाईजी के रचना संसार पर अपने विचार व्यक्त करूँ।

'लीला' शब्द का मूल अर्थ है – खेल, क्रीड़ा, संसार रचना हेतु परमब्रह्म के विविध रंग। वह गायन अथवा रचना जिसमें अवतार स्वरूप परमब्रह्म की अलौकिक क्षमताओं का गुणगान किया गया हो, लीला है।

कहने का अभिप्राय यह है कि लीला का सम्बन्ध स्रष्टा (creator) के किसी प्रकट रूप की अलौकिक छवि के साथ होता है। भजन अथवा भक्तिरस प्रधान रचना में भी विषय अध्यात्म से जुड़ा रहता है परन्तु जहाँ लीला में माधुर्य का प्राधान्य रहता है वहाँ भजन में निवेदन, आत्मसमर्पण, दैन्य, अनुग्रह भावना, ईश वन्दना, पुष्पार्चना अथवा परमब्रह्म की अलौकिक सिद्धियों एवं स्वरूपों का पूरी निष्ठा और विश्वास के साथ गुणगान।

इन दोनों काव्य विधाओं में परस्पर बहुत बारीक अन्तर है। कृष्ण प्रेम में उन्मत्त भक्त लीला के द्वारा अपने हृदय का माधुर्य कलश इष्टदेव के चरणों पर उँडेल देता है और शक्ति माँ के सम्मुख नतमस्तक होकर वहीं भक्त देवी माँ के अनुग्रह के हेतु यों आर्तनाद करता सुनाई देता है –

चॗु छख राऽग्न्या चॗु छख शारिका
चॗु छख शक्ती चॗु छख माता
छुस नादार स्यठा लाचार
चॗु बख्शन हार जगत अम्बा।
चॗु छख ज्ञानन अन्दर थोदॅ ज्ञान

चुँ छख ध्यानन अन्दर बोड़ ध्यान
चुँ छख माज्यन अन्दर बऽड् माऽज्य
छुसय सन्तान वन्दय ना प्राण।
चुँ भख्त्यन पॉनु मोय चावान
म्य चावुम ज़ाऽन्य हुन्द दामा
बुँ छुस नादार स्यठा लाचार
चुँ बख्श्नहार जगत अंबा ।'

'संजीवनी' –आनन्द स्वामी प्राणनाथ भट्ट 'गरीब' लीला पृ०–2

कश्मीरी भक्ति काव्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह विशेषता 'भाई जी' के रचना संसार का भी आकर्षण बिन्दु है।

कश्मीरी भक्त कवि मूलतः समन्यवादी (harmonizing) है। वह निर्गुण सगुण, शिव–शक्ति, राम–कृष्ण, देवी माँ के विविध रूपों का समान निष्ठा के साथ स्तुति वन्दना में लीन रहता है। इतनी ही नहीं वह सूफ़ियों के तसव्वुफ़ से भी मौक्तिक कण चुन लेता है। उसके विचारानुसार अध्यात्म को किसी एक खूँटे से बान्धने की ज़रूरत नहीं है। ध्येय वस्तुतः एक है ! लक्ष्य सर्वविदित और साध्य अनन्य हैं पर उस लक्ष्य तक पहुँचने के हेतु भिन्न–भिन्न मार्ग विविध दिशाओं में साधकों के निरन्तर चलने से पगडंडियों के रूप में दिखाई देते हैं पर सबका अन्तिम लक्ष्य एक ही है, भारत के भक्ति साहित्य में यह बात बहुत कम देखने को मिलती है। वहाँ रामभक्त सम्प्रदाय अलग है और कृष्ण भक्त सम्प्रदाय अलग, शक्ति माँ के उपासक अलग हैं और राधास्वामी अलग, निगुर्ण पंथी अलग हैं, और सूफ़ी साधक अलग। अर्थात् यहाँ भक्ति ने दृढ़ता के साथ सम्प्रदाय का रूप धारण किया है। लेकिन कश्मीरी भक्ति साहित्य का मूलाधार समन्वय है। स्वामी परमानन्द एवं पण्डित कृष्णजू राज़दान को पढ़कर अथवा शम्स–फ़कीर, अहद ज़रगर और समद मीर की रचनाओं का गहन अध्ययन

करने के पश्चात् यह समन्वयवादी दृष्टि हमें विशेष रूप से आकर्षित करती है। समद मीर के शब्दों में :–

–' च़लि यस शक, दीऽय च़रव तऽ शुबहू
राम रहीम तस यकसान छू
गलि यस मनुँ दीऽय बनि साधू
पर ओऽम् सू पर ओऽम् सू
कथ बोज़ वथ छय सथ त्रोपरू
गथ कर यारस नारस अू
काम गाल खाम यऽनि रोजी मूह
पर ओऽम् सू पर ओऽम् सू।'

('कुलयाति समदमीर' – मोतीलाल साकी) पृ0–180–182

अथवा

आवारुँ कॅरनस मारऽमतिये, पार्वतीये लो।
दिलदारुँ छिम दिलस नार तऽतिये पार्वतीये लो।
सतुँ ऋषिव रॅंट कोह बयाबान
छ़ारहोन भगवान
तिम ग़ारऽनुई मंज़ आरुँकतिये, पार्वतीये लो !
सथ कुठि यथ म्यानि जाय शूबान
सत छिसो सुलतान
सीतायि रामावतार ततिये, पार्वती ये लो।'

('कुलयाति समदमीर' – मोतीलाल साकी) पृ0–144–145

यही समन्वयवादी काव्य दृष्टि हमें 'संजीवनी' में संग्रहीत रचनाओं में भी देखने को मिलती है। भाई जी को किसी एकमत, सम्प्रदाय अथवा वाद के साथ जोड़ा नहीं जा सकता। वह वादी नहीं हैं और न बनना चाहते हैं, अरे वह तो सन्त हैं, उनका हृदय पारदर्शी है, उनकी दृष्टि दिव्य है, उनका चिन्तन योगी का चिन्तन है और

उनकी अभिव्यक्ति एक कवि की अभिव्यक्ति है। वाह ! क्या अद्‌भुत मेल है एक योगी और एक कवि का, निस्सन्देह दिव्य एवं अलौकि ।

भाई जी ने अपनी कई रचनाओं में शिव स्तुति की है। शैव धर्मानुयायी होने के कारण कश्मीर के शैवमत एवं शिव सम्प्रदाय से प्रभावित होना उनके लिये स्वाभाविक है। देखा जाय तो शिव तब तक शव है जब तक शक्ति का सहयोग उसे प्राप्त न हो। शक्ति के बिना शिव अपूर्ण है और शक्ति की सिद्धि शिव में निहित है। समय–समय पर विभिन्न भक्त कवियों ने कश्मीरी भाषा में शिव स्तुतियाँ लिख कर परमशिव सच्चिदानन्द गण को समर्पित की हैं। इस दृष्टि से लल्लेश्वरी के बाद स्वामी परमानन्द, कृष्ण जू राज़दान, स्वामी गोविन्द कौल तथा भवानी भाग्यवान द्‌यद उल्लेखनीय हैं। कृष्णजू राज़दान ने 'शिव–परिणय' (शिवलग्न) कथात्मक काव्य लिखकर शिव शक्ति को नूतन आयाम प्रदान किये हैं। भाई जी ने एक दृढ़ निश्चयी शिव भक्त के रूप में आत्म निवेदन के साथ अपना सब कुछ शिव चरणों में समर्पित किया है। इन भक्तिपरक लीलाओं में भक्त अत्यन्त दैन्य भाव से शिव की क्षमताओं का उल्लेख करते हुए हाथों की अजुलि में भावनाओं के सुमन भर कर शिवमस्तक पर श्रद्धा और पूर्ण निष्ठा के साथ अर्पित कर रहे हैं। परमप्रिय का आश्रय प्राप्त करने के हेतु भक्त आत्म विस्मृत होकर विनीत शब्दों में यों याचनारत दिखाई देता है :–

तीज़ुँ चान्यि गलि म्यऽन्य पापु शीन माऽन्यी
शिवनार्थुं चाऽन्यी करान पूज़ा
वासुक तुँ चन्द्रम छुय च़्य लूभाऽनी
शिवनार्थुं चाऽन्यी करान पूज़ा ।
भावुँ नागरादस छि पम्पोश चाऽन्यी
नर्तुं कति वुजिहे नागन पोन्य
चोर वेद चेय छी लौलि ललुँवाऽन्यी
शिवनार्थुं चाऽन्यी करान पूज़ा।

('संजीवनी' पृ० 05)

'अहं ब्रह्मस्मि न द्वितीय अस्ति' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ, कोई दूसरा नहीं। यही 'सोऽहम' अथवा 'सोऽहमास्मि' है। जीव और ब्रहम के एकत्व का यह सिद्धान्त मूलतः अद्वैतवादी चिन्तन का आधार बिन्दु है। जगत का मूल तत्त्व तो एक ही है जो अगम, अगोचर, अचिन्त्य, अलक्षण तथा अनिर्वचनीय है।

अद्वैतवाद का मूल ऋग्वेद में है। उपनिषदों में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। माण्डूक्य उपनिषद् में 'आत्म ब्रह्म है' यह स्पष्ट घोषित किया गया है।[1]

अद्वैतवादी को ही वेदान्ती भी कहा जा सकता है । कश्मीर शैवमत अनुयायी भी मूलतः अद्वैतवादी है। अद्वैतवादी ज्ञान मार्ग है, उसमें ज्ञान के साथ भक्ति का समन्वय नहीं होता । कश्मीर शैवमत में ज्ञान और भक्ति का समन्वय है, शिव को ही परमेश्वर मानने वालों को शैव कहा जाता है और उनके धर्म को शैवमत । शिव का अर्थ है शुभ या कल्याण।[2]

भाई जी की लीलाओं पर कश्मीर के शिव दर्शन एवं शंकर के अद्वैतवादी चिन्तन का समान रूप से प्रभाव पड़ा है। साधना के पथ पर प्राप्त अनुभवों के आधार पर 'भाईजी' अपनी लीलाओं में गहन दार्शनिक तथ्यों को भी अनावृत करते हुए आगे बढ़ते हैं। 'सोऽहम' – मैं वही हूँ अर्थात् ब्रह्म हूँ । 'बृहत् हिन्दी कोश' में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी – ' यह वेदान्त दर्शन का वाक्य है जिसमें यह माना जाता है कि इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्म व्याप्त है और जो कुछ है सब ब्रह्म ही है, जीव भी ब्रह्म ही है, पर जागतिक माया के आवरण के कारण अपने (ब्रह्म) रूप को पहचान नहीं पाता जब उक्त आवरण हट जाता है तब वह ब्रह्म ही हो जाता है।[3]

---

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण– 1985 ई० पृ० 16–17
2. ' वही – पृ०–837–838
3. बृहत हिन्दी कोश – ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी; सम्पादक– कालिका प्रसाद तथा अन्य – पृ० 1561

'सोऽहम' ही कश्मीरी भाषा में 'सूहम' बन जाता है । हिन्दी में हम 'मैं ' सर्वनाम का बहुवचन है। फारसी भाषा में 'हम' का अर्थ है – समान, एक सा, 'सो' का अर्थ है – 'वह' । वह जो एक मसान हम सब में व्याप्त है – 'हम सो' कहलाता है। वही कश्मीरी में 'हमसू' बन गया। इसी 'हम सू' एवं सूहम (सोऽहम) के आधार पर भाई जी अपनी एक लीला में अद्वैतवादी चिन्तन को यों वाणी प्रदान करते हैं :–

'हम सू दारि बेहु न्येह घटि फेरे
ज़्येरे ज़्येरे सूहम भाव
पुशरिथ मन प्राण तस लाग शेरे
ज़्येरे ज़्येरे सूहम भाव।
च्युँ तुँ बुँ तुँ हुतुँ सु अति क्या न्येरे
लछि नोव आऽसिथ छुय बेनाव
बेशुमार जोयि अकि आगरुँ न्येरे
ज़्येरे ज़्येरे सूहम भाव।
अऽछ दरुँ लज्यि मचुँ च्यान्ये वेरे
पछि़ हुॅन्ज़ थफ छम वछिसुँय मंज़
लुकुॅमोत अन्यिगोट वति वति गेले
ज़्येरे ज़्येरे सूहम भाव।'

(संजीवनी–पृ० 11–12)

जीव और ब्रह्म के मध्य माया की भूमिका भौतिक जगत की सृष्टि के हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आखिर लीला का विस्तार कैसे सम्भव हो सकता है ! शिव अनेक बनने की इच्छा के प्रतिफलन हेतु माया को सक्रिय बना देता है और जीव उसके मोहपाश में बन्ध कर स्वर्ण श्रृंखलाओं में जकड़ जाता है । इस माया मोह रूपी मकड़ी के जाले में जब वह पूर्णरूपेण उलझ जाता हैं तो कभी–कभी उस उलझन में अपनी सत्ता तक खो देता है तो कभी यथार्थ की उष्णता से उसकी बुद्धि का यख पिघल जाता है। उसे एहसास होने लगता है कि मैं तो घाटे में रहा, मैंने सब कुछ खो दिया, जन्म यूँ ही व्यर्थ गँवा बैठा और

जब यह अनुभूति शिद्दत पकड लेती है तो जीव विचलित होकर यों विलाप करके रह जाता है –

– संसार ज़ालुँ छुस वलुँनुँ आमुत
मायायि हुँज़ि रज़ि गंडुँनुँ आमुत
मारुँ गोस नतुँ जल गंड़ म्यॅ मुचेँराव
बोठेँ वाति पानय म्यॅ फुटमुँच़ नाव।
लूभस छि बाऽज्यवठ क्रधस सूँत्य
नावि वाऽल्य भ्रम दिथ मायायि कूँत्य
चीरुँवुँन्य दुऽल्यछिम यीर वन्यिनाव
बोठॅ वाति पानय म्यॅ फुटॅमुच़ नाव।
(संजीवनी–पृ० 16–17)

जीव जब अपने पथ से विचलित हो जाता है अथवा माया के अधीन होकर परवश हो जाता है तो चन्द लमहों के लिये बिना पंख के ही आकाश में उड़ान भरने का प्रयास करता है लेकिन शीघ्र ही जब उसे अपनी क्षुद्रता का एहसास हो जाता है वह तड़प–तड़प कर आठ–आठ आँसू रो उठता है। सिद्धि पथ पर एक नहीं अनेक वैरी उसको ललचाई निगाहों से ताकते हैं, घूरते हैं और निगलने के लिये उद्दत हो जाते हैं। काम, क्रोध, वैर, लोभ, मोह एवं अहं भाव ने तो उसे परवश बना के छोड़ दिया है, धीरे–धीरे गल जाने के लिये। हाँ, उसे अपने किये हुए पापों का फल भुगतना होगा। आख़िर उसके बदले कौन भुगतेगा। चारों ओर से निराश होकर वह परम सत्य की शरण में आकर पूर्णतः आत्मसमर्पण कर देता है और आत्म निवेदन करके खून के आँसू बहा देता है। कहते हैं भक्ति में प्रायश्चित (atonement) आत्मशुद्धि के हेतु नितान्तावश्यक है। यह तो साधना के पथ का पहला पड़ाव है और इस पड़ाव पर आत्म नियन्त्रण का अपना विशेष महत्त्व है। कवि असहायावस्था में प्रार्थनारत इष्ट चरणों में निवेदन करता है कि :–

1) 'फुटुँ फुँटु गोमुत वुछतम पानस

नज़रा करतम हे
तापु वुडुरॅ मंज़ स्यकि माऽदानस
साया थवतम हे।
कामुॅ ज़िसस मंज त्येलि कवुॅ फॅटुहा
नज़रा करतम हे !

2) क्रॅूधन नार गोंड सतुॅक्यन जामन
3) मदुॅ हुऽस्य अहमन अऽछ पऽट गॅडंनम।
4) वाऽरन कंऽडुॅनम वुछ मोछि मूरन
5) ओगनुय आऽसिथ दोगुॅन्यार पुठुॅ गोम
मंज़ व्यवुॅहारस दुॅयतुक त्योल प्योम
त्रुॅशनायि क्रुॅम प्योम ज़्हारुॅय त्येल्योम
नज़रा करतम हे !

(संजीवनी–पृ० 54–55)

इस प्रकार जीव भगवद्कृपा के हेतु आर्त और दीनहीन मुद्रा में प्रतीक्षा रत दिखायी देता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि उलझन को तो केवल परम तत्त ही सुलझा सकते हैं। दास्य भाव की भक्ति का पथानुसरण करते हुए अर्द्ध जाग्रत अवस्था में जीव भगवत् कृपा को पाने के हेतु लालायित रहता है। वास्तव में भक्त और इष्ट का सम्बन्ध अपने आप में स्वर्गिक माना जाता है। इस सम्बन्ध में गुरु के अतिरिक्त किसी और मध्यस्थ की कोई भूमिका नहीं है। ईशकृपा का प्रसाद पाने के हेतु भक्त पूरी निष्ठा और दृढ़संकल्प के साथ साधना में जुट जाता है। देखिये हनुमान, प्रह्लाद, शबरी, केवट, अहिल्या, यशोदा–नन्द बाबा, मीरा, परमानन्द, कृष्णजू राज़दान, स्वामी गोविन्द कौल आदि सब भक्त ही तो थे जिन्हें अपनी निष्काम भक्ति का प्रसाद जीते जी प्राप्त हुआ है। भाई जी उसी निष्काम भक्ति पथ पर आगे पग बढ़ाते नज़र आते हैं। जीव और ब्रह्म के बीच गहरी खाई को पाटना होगा और यह ईश कृपा के बिना सम्भव नहीं। अतः सन्त कवि परमप्रिय की कृपा दृष्टि पाने के हेतु यूँ अश्रु–सिक्त निवेदन करते हुए दिखाई देते हैं।

'पर्ुथ पानय इदारथ म्यान्यि
कर्मयलान्यि दिमॅुहय मीठ्य
म्ये लोब ठहराव चऽज्य चलॅुलार
गमन गमरवार नज़र चाऽन्यी ।
दमन मंज़ दम बॅु गंऽजुरान छुस
ब्रॅुज़्यन हुँन्द चिह ति सुमरान छुस
गहे बेदम गहे दमदार
गमन गमखार नज़र चाऽनी।
गहे सथ तय असथ त्राऽविथ
बऽनिथ शिवॅु रूॅप जटा धाऽरिथ
शिन्यस ह्योर चोन ज्योति द्वार
गमन गमखार नज़र चाऽन्यी।'

(संजीवनी–पृ० 120–122)

सन्त कवि भाई जी के आध्यात्मिक चिन्तन पर तसव्वुफ़ की साधना–पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पड़ाव है । स्वयं भाई जी सूफी सन्त और कवि अहद ज़रगर के बहुत करीब रहे और ज़रगर साहब ने उनकी कुशाग्र बुद्धि और सर्जनात्मक प्रतिभा को सराहा है। इस्लाम के रहस्यवादी 'सूफी' कहलाते हैं और उनके दर्शन को तसव्वुफ़ कहा जाता है। सूफी परमात्मा को परमसत्य मानने के साथ साथ अपना माशूक़ भी मानता है और आशिक़ बनकर वह उस पर निछावर होने के लिये वैसे ही व्याकुल दिख़ायी देता है जैसे पतंगा (फतिंगा, परवाना) दीपक पर ! सूफी इस सृष्टि को उस परमसत्य का प्रतिबिम्ब मानता है, वह इश्क़ मजाज़ी के पथ पर इश्क हक़ीक़ी की खोज में निकल पड़ता है और साधना की विभिन्न अवस्थाएँ (नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत) पार करता हुआ तथा विभिन्न मंज़िल / मुकाम (शरीयत, तरीकत, मारिफ़त, हकीक़त) तय करता हुआ अनल्हक (अहं ब्रह्मस्मि) की स्थिति में पहुँच जाता है। यही 'एकमेक' होने की अवस्था है जिसे सूफी 'हाल'

की स्थिति में पहुँचना कहते हैं। साधना का यह पथ अत्यन्त दुशवार एवं गहन है लेकिन सूफ़ी आशिक इस पथ पर निकलकर अपने माशूक में लय होने के लिये लालायित रहता है। वास्तव में मारिफ़त (वास्तविक ज्ञान, अध्यात्म, पहचान) के रहस्य से अवगत होकर इरफ़ान (ब्रह्मानन्द, ब्रह्मज्ञान, दिव्यानन्द) के आनन्द रस में मग्न हो जाना सूफ़ी साधक का लक्ष्य है। वह रिंद (रसिया, मस्त, मधप) बनकर वज्दानी कैफियत (आनन्दाधिक्य से आत्मविस्मृति की दशा) की अवस्था में मधुर प्रिय–स्मृति में खो जाता है। 'हाल' की अवस्था में पहुँच कर उसकी दृष्टि मुक्त हो जाती है और भीतर शशकल (तसव्वुफ़ में एक मुक़ाम की निशान दिही) का उत्स फूट पड़ता है। भाई जी अपनी एक लीला में लिखते हैं :–

'विश्वास सऽर्दुरस तऽल्य अचान
लाले बदखशां जान्यिजान
तिम रिन्दुं ज़िन्दुं छिनुं ज़ान्हें मरान
नोशा करान मय खार्नुसुय
सतसंग छु प्रेयमुक रंग कड़ान
ज़न सिर्यि ताबान पार्नुसुंय।
ग्वुरॅ द्वार ग्वुरॅ गंगा वसान
शंकर प्रसन्नचित अति असान
शेशकल छि नारस मँज़ वुहान
लाऽरिथ़ गछ़ान इरफार्नुसुंय ।

(संजीवनी–पृ० 244–245)

भाई जी के सम्पूर्ण भक्ति काव्य का प्रमुख आकर्षण गुरु वन्दना में है। गुरु के प्रति उनका आकर्षण निस्सन्देह अनुपम है और प्रत्येक भक्त को अपनी गुरु वन्दना से मोह लेते हैं।

'गुरु' शब्द केवल पथ प्रदर्शक उद्धारक के रूप में ही प्रयुक्त नहीं हुआ अपितु अपने व्यापक अर्थ में इष्ट का वाचक बन जाता है। भाई जी ने कई लीलाओं में मुक्त कंठ से गुरुद्वार की महिमा का

गुणगान किया है । वस्तुतः सम्पूर्ण भक्ति काव्य का यह प्रमुख आकर्षण है। यह सत्य है कि 'गुरु के बिना गत नहीं' 'गुरु के बिना सिद्धि नहीं' 'गुरु के बिना ज्ञान नहीं' । गुरु ही वस्तुतः शिष्य के भीतर शाश्वत ज्ञान–प्रकाश की लौ उद्दीप्त करता है। 'शशकल' के उत्स को प्रवाहित करने में भी गुरु की भूमिका अहम है। यह बात सर्वविदित है कि सन्त कबीर ने ईश्वर और गुरु के बीच गुरु को चुना और उनके चरण पकड़ कर स्तुति में लीन हो गये। कश्मीरके बहुचर्चित़ सन्त कवि पण्डित कृष्णजू राज़दान लिखते हैं :–

'ओन छुस ज़ाऽन्य हिंज़ वथ वुछनावतम
सत गोरु हावतम गटिमंज़ गाश।
ग्यानिक न्यथरूय वारऽमुच़रावतम
पम्पोश ज़न फोलरावतम मन
अद्वैत भावकिन पानस छावतम
सतगोरू हावतम गटि मंज़ गाश।
मूलतलुॅ ओसुस न्यरमल पोनी
व्यवहार प्रकृच़ कोरनम यख
निर्णय गर्मी सूत्य व्यगलावतम
सतगोरू हावतम गटि मंज़ गाश।'

(कुलयाति कृष्ण जू राज़दान – सम्पादक ' सोमनाथ वीर, जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी, श्रीनगर, प्रकाशन 1984 – पृ० 94–95)

भाई जी ने अपनी रचनाओं में बारम्बार गुरु के चरणों में श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हुए गुरुकृपा के प्रति अपनी दृढ़ निष्ठा व्यक्त की हैं। केवल उनकी गुरु स्तुतियों पर ही एक विस्तृत शोध पत्र लिखा जा सकता है । उन्होंने गुरुद्वार, गुरुमन्त्रणा और गुरूपदेश को साधनात्मक जीवन में संजीवनी सदृश स्वीकारा है। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं कौन क्या कह रहा है :–

'कुस क्या वन्यम छुनुँ अथ सनुनु

ग्वर्‌ुँ दीव नखि डखि छुम पनुन
तऽस्य छुम वनुन गुदुरुन बनुन।
ग्वर्‌ुँ दीव नखि डखि छुम पनुन
सर्‌रवम तुँ अर्पण छुस बुँ चे़य
ग्वर्‌ुँ दीव च्ये रोस कुस छु म्ये
अमृत कोंडुँक वुज़नाव श्रेह
ग्वर्‌ुँ दीव नखि डखि छुम पनुन।

(संजीवनी–पृ० 203–204)

ये भक्त अथवा सिद्ध सन्त जो गुरु–द्वार पर निछावर होते हैं जीवन में कुछ खोकर भी बहुत कुछ प्राप्त करते हैं । भौतिक सम्पदा, वैभव एवं सामर्थ्य का यहाँ कोई मोल नहीं। यहाँ 'लोल' का महत्त्व है और इस 'लोल' में जितनी सघनता होगी, जितनी पुख़्तगी (परिपक्वता) होगी तथा जितना विस्तार होगा, जीवन सिद्धि को उतना ही समीप समझना चाहिए :–

'ग्वर्‌ुँ दामानस लाल ताबानय
कम जानानय बोज़
लोलुँ व्येमानस खऽत्य परवानय।
कम जानानय बोज़।
ग्वर्‌ुँ द्वारस आऽस्य पान वर्थुँरानय
मांझान अन्तःकरण
बेरंगुँमंज़ आऽस्य रंग न्येरानय
कम जानानय बोज़।'

(संजीवनी–पृ० 88)

उन्हें दृढ़ विश्वास है कि गुरु–उपासना भक्त के जीवन को एक नई दिशा प्रदान करती है। गुरूपासना में अपार क्षमता है, विपथगामी भूला भटका राहगीर भी गुरु उपासना से ज़िन्दगी के 'कु' को 'सु' में बदल सकता है। भक्त में श्रद्धा और विश्वास का अपना

विशेष महत्त्व है भक्त अपने इष्ट के प्रति निष्ठावान रहते हुए आत्म–समर्पण करके निश्चिन्त हो जाता है । उन्हें दृढ़ विश्वास है कि अपने शिष्य के हेतु गुरु स्वयं पथ की सारी बाधायें मिटाकर मार्ग कंटकहीन कर देंगे । सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि भक्त के आत्म–निवेदन में कितनी उष्णता है :–

ग्वर्रु पाद युस छु पूज़ान
वोर्पुदान तस छु ब्रह्मज्ञान
अंर्दुरिम न्यबर छु न्येरान
गछ़ वोन दिवान जिगरो।
गोर कंड्यि कड़ी च्ये पादन
वाती सु पूर्रु दादन
समुँखी सु न्यथ्रु प्रभातन
गछ़ वोन दिवान जिगरो।
शेरी सु कर्मलीखा
करि स्यऽज़ सु भाग्यरेखा
सोय ग्वर्रु दया करी ना
गछ़ वोन दिवान जिगरो।'

(संजीवनी–पृ० 45)

कवि 'गरीब' ने अपने भक्ति काव्य में मानव–मन के विषय में गम्भीरता से विचार किया है। मन वस्तुतः ज्ञान, संवेदन, संकल्प आदि की साधन रूप अन्तर् इन्द्रिय है, जिसे चित्त भी कहते हैं। अंतःकरण की संकल्प विकल्प कराने वाली वृत्ति [1] मन को नियंत्रित करना अथवा काबू में रखना भक्त के लिये पहली शर्त है। अनियंत्रित अवस्था में यही मन हमें धलधल में धकेल देता है और क्रीत दास की स्थिति में हमें जीने के लिये विवश करता है। उस स्थिति में हमें ज़िन्दा लाश की

3. बृहत हिन्दी कोश – ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी; सम्पादक– कालिका प्रसाद तथा अन्य – पृ० 1045

तरह जीवन जीते हैं – पशुवत, विवेकहीन और लक्ष्यहीन!

लेकिन यही मन जब साधनात्मक जीवन में नियंत्रित हो जाता है अथवा अनुशासन अधीन रहकर जीवन व्यवहार में भागीदार बन जाता है तो भक्त के जीवन में बसन्त का माधुर्यमय उल्लास छा जाता है अथवा निखर उठता है। बड़ी स्वर्गिक कल्पना है जिसे यथार्थ में बदलने हेतु योगाभ्यास के क्रियापथ पर चलना अनिवार्य हो जाता है। 'भाई जी' मन को ही तीर्थ समझ कर भक्त को सावधान करते हुए लिखते हैं :–

'मन छुय तीर्थ सन तो पानो
मव फेर ओरॅ म्यान्यि जानानो
रिन्दॅु पान ज़ाल ज़िन्दय परवानो
मव फेर ओरॅ म्यान्यि जानानो।
मनचे गंगायि पाज़ा करतम
इन्द्रे शोमुरिथ मन माल ज़पतम
गंगा माता यीयि पाऽन्यपानो
मव फेर ओरॅ म्यान्यि जानानो।'

(संजीवनी–पृ० 59–61)

योगाभ्यास के क्रिया पथ पर साधक जब तमस अन्धकार में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करता है अथवा भीषण अग्निदाह से मन के मैल को जला डालता है तो विशुद्धावस्था में मन ख़ालिस सत्त का पर्याय हो जाता है। 'भाई जी' के शब्दों में :–

'मनॅुचे मनकल्यि नार वुहनोवुम
दम दिथ प्राणन होवुम पान
अन्धॅुकारस मंज़ चोंगा ज़ोलुम
दम दिथ प्राणन होवुम पान
सतॅुकिस यन्द्रस पन येल्यि खोरुम
अपॅुज़्युक गंड मुचॅुरोवुम तान्य

चक्रस मंज़ पाना नचनोवुम
दम दिथ प्राणन होवुम पान
वोलॅबोरस तोलॅबार करुॅनोवुम
काम क्रोध ज़ाऽलिथ हुमुमस पान
प्रेमुक मनथ्रुॅर मन परुॅनोवुम
दम दिथ प्राणन होवुम पान।

(संजीवनी–पृ० 70–71)

'भाई जी' योग साधक भी हैं। योगाभ्यास के विविध अनुभवों को काव्य के ताने–बाने में प्रस्तुत करके वस्तुतः वे अपनी रचनाओं की दार्शनिक गइराई का हमें एहसास कराते हैं। पतंजलि ऋषि कृत योगशास्त्र में चित्तवृत्ति के निरोध का विशद विवेचन हुआ है । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का इसमें विस्तार के साथ वर्णन किया गया है – यही अष्टांग योग है। हठयोग, योग का एक भेद है जिसमें साधना के विभिन्न व्यवहार हठ पूर्वक अपना कर चित्तवृत्ति को बाह्य विषयों से हटा कर अन्तर्मुख करते हैं। कुंडलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में स्थिति एक शक्ति है जिसे तन्त्र और हठयोग का साधक जगाकर ब्रह्मरंध्र में लगाने का यत्न करता है। भाई जी के साधनात्मक जीवन की ये प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। मुझ जैसे सामान्य जीव की बुद्धि और सोच के बाहर। ये तो दर्शन की रहस्यात्मक ग्रन्थियाँ हैं जिन्हें भाई जी समान कोई सिद्ध पुरुष ही सुलझा सकता है । योगाभ्यास की महान क्षमताओं को रेखांकित करते हुए भाई जी लिखते हैं :–

'वुज़नाव शक्ती कोंडुॅलनी
इडा तुॅ पिंगला गछ़िनऽन्यी
पतुॅ सुषमणा कड़ खऽन्यि खऽन्यि
ग्वरुॅ दीव नखि डखि छुम पनुन।
अष्टांग चकुॅरस मँज़ अऽचिथ.

वाऽराग मनुँसर बेहु खऽटिथ
दमरठतुँ यिनुँ न्येरख फऽटिथ
ग्वरुँ दीव नखि डखि छुम पनुन।
आधार ब्रहमुक ओमकार नाद
तऽथ्य छेपि लगान युगी तुँ साद
ब्रह्म रन्ध्रुँ न्येरान नागुँराद
ग्वरुँ दीव नखि डखि छुम पनुन।'

(संजीवनी—पृ० 204—205)

एक योगी और तत्त्व चिन्तक के साधनात्मक जीवन की विभिन्न क्रियाओं का उल्लेख करते हुए भाई जी अपने अनुभूत सत्य को कहीं स्पष्ट शब्दों में और कहीं संकेतों के माध्यम से ज़ाहिर कर देते हैं। यह केवल किताबी ज्ञान नहीं है जो वास्तव में उधार ली हुई सम्पति है। यह तो उनके निजी अनुभवों का प्रतिफलन है। वे जिन रूहानी तजुरुबों की गर्दिश (कालचक्र) से गुज़र रहे हैं वही तजुरुबे व्यक्त होने के लिए उनके हिया को बेक़रार कद देते हैं। फलतः मस्तमौला कवि ग़रीब बिना किसी रोक—टोक के पुकार उठता है :—

'स्तुँकिस यन्द्रस पन येल्यि खोरुम
अपुँज़्युक गंड़ मुचुरोवुम तान्य
चक्रस मंज़ पाना नचुँनोवुम
दम दिथ प्राणन होवुम पान।
यूगुँ के मन्थुँरुँ पान हयोर खोरुम
रसुँ रसुँ अत्यि ठहरोवुम पान
तपुँ ऋषिनुय सूँत्य ज़ान करुँनोवुम
दम दिथ प्राणन होवुम पान।
दयि सुँन्ज़ि लयि सूँत्य ह्यस होश थोवुम
ओम के कोम्बुँ अबुसोवुम पान
गम गोसुँ त्राऽविथ पान लोचुँरोवुम

दम दिथ प्राणन होवुम पान।'

(संजीवनी–पृ० 70–71)

'सन्त' शब्द का शब्दिक अर्थ है – बुद्धिमान, पवित्रात्मा और परोपकारी। तीनों ही गुण हमें भाई जी के व्यक्ति में एक साथ देखने को मिलते हैं। अत्यन्त शान्त स्वभाव के परोपकरी सन्त जो 'संजीवनी' के माध्यम से अपनी बौद्धिक सम्पन्नता और चिन्तन की परिपक्वता का बोध कराते हैं। उनके भक्ति काव्य का वैचारिक पक्ष अत्यन्त सम्पन्न है। वे स्वयं सन्त होने के साथ–साथ एक बुद्धिजीवी भी हैं और चिन्तन को तर्क की तुला पर तौल कर अनुभूति के सहारे अर्थात् कविता के माध्यम से हृदय–ग्राह्य बना देते हैं।

भक्ति में आत्म निवेदन का अपना विशेष स्थान एवं महत्त्व है। दास्य भाव की भक्ति में जीव इष्ट के सम्मुख पूर्ण समर्पण करके केवल ईशानुग्रह हेतु प्रतीक्षारत रहता है। उसे जब अपनी असमर्थता एवं किंकर्तव्यविमूढ अवस्था का एहसास सताने लगता है तो वह भौतिक पाशों से मुक्त होने के लिए व्याकुल हो जाता है और इसी व्याकुल विह्वल मन के साथ वह ईश दरबार में अपनी याचना पेश करता है। उसे अपने इष्ट देव पर अटल विश्वास है, वहीं भँवर में हिचकोले खाती डोलती नैया को पार लगा देगें? गहन तमसान्धकार को प्रकाश की अद्‌भुत किरणों से ज्योतिमर्य बना देंगे। वे चाहें तो 'हमारे पीतल को सोने में बदल देंगे।' पण्डित कृष्णजू राज़दान के शब्दों में :–

'यछि चानि दानॅु दानॅु वचि सोनॅु शीनॅु मानि
हा गोसानि सानि सरतलि करतॅु सोन।
नंगॅु छुस लोगमुत मंज़ प्यवॅुवुनि शानि
ज़ंगॅु छम नॅु क्यथ पाऽठ पर्कु मंज़िलस
अंग हीनस म्य श्रान कर नाव गंगॅु वानि
हा गोसानि सानि सरतलि करतॅु सोन।'

(कुलयाति कृष्णजू राज़दान – स० ' सोमनाथवीर –पृ० 254)

संजीवनी की कई लीलाओं में भी भक्त अत्यन्त विनीत भाव से इष्ट कृपा के हेतु यों प्रार्थनारत दिखाई देता है :–

'चॅु यिखना सोन ताल्युन म्योन फोलिहे
अकी नज़रे म्यॅु यचॅुकोल दोद बलिहे।
मे वरकोन अजॅुलसॅुय करताम गोमुत
बॅु परछ़योन अनिगऽटिस मँज़ छुस सोत्योमुत।
दमा अख कड तॅु फुरसथ बेह्नु तॅु सान्ये
बॅु भावय बीनॅु बीनय कर्मलान्ये।
दपय सम्सॉऽरस्य लूकव क्या म्य कोरॅुहम
अलाव गोंडॅुहम तॅु ती ती पानॅु वोनुहम।
हयडुन गेलुन म्य लूकन हुन्द कर्यम क्या
चॅु राऽज़ी रोज़तम त्यलि छुस शहनशाह।'

(संजीवनी–पृ० 236–37)

जब निरन्तर प्रतीक्षा रत रहने के बावजूद भी भक्त ईश कृपा से वंचित रहता है तो अत्यन्त निराश अवस्था में वह आत्ममन्थन की ओर उन्मुख हो जाता है, उसे लग रहा है कि अभी भी उसके भीतर काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी अजगर कुन्डली मार कर विराजमान है। सांसारिक आकर्षण अर्थात् राग के अतिरिक्त अहंकार एवं ईर्ष्या ने आज भी उसके मानस को मलिन कर दिया है। उसे लग रहा है कि वह असहाय है, बेबस है, विवश है, पराधीन है, भ्रमित और पथभ्रष्ट है। एसी अवस्था में तो केवल पराशक्ति (Transcendental Power) ही उसका उद्धार कर सकती है। वह ईश शरण में आकर खून के आँसू बहाते हुए दिव्य दृष्टि के हेतु इस प्रकार याचना करता है। उसके मानस की सारी पीड़ा, व्यथा, हीनत्व बोध, परवशता एवं नश्वरता का एहसास उसके आत्म निवेदन को ज़ोरदार और जानदार बना देता है। उसके कथन में व्याप्त दीनता और हीनता का भाव देखते ही बनता है :–

'फ़ॅुतु फ़ॅुतु गोमुत वुछ़ुतम पानस

नज़रा करतम हे
तापुॅ वुडुर मंज़ सैंकि माऽदानस
साया थावतम हे।
काऽल्य मरुन छुम पायस प्यमुॅहा
छ़टुॅ–छ़टुॅ मा करुॅ हा
कामुॅ ज़िसिस मंज़ त्येलि कवुॅ फटुॅहा
नज़रा करतम हे।
ओगनुय आऽसिथ दोगुॅन्यार पुॅठुगोम
मंज़ व्यवुहारस दुॅयतुक त्योल प्योम
त्रॅुशनायि क्रुम प्योम जाहुरुॅय तेल्योम
नज़रा करतम हे।'

(संजीवनी – पृ०–54–55)

निष्कर्ष :–

अन्त में यह कहकर बात समाप्त करना चाहता हूँ कि अभी कुछ भी नहीं कहा है, कुछ भी नहीं लिखा है। बहुत कुछ कहना और लिखना शेष रह गया है। भाई जी का रचनासंसार वस्तुतः उनके निजी अध्यात्म अनुभवों की उष्णता से जीवन्त होने का प्रमाण दे रहा है। यह कागद लेखी बात नहीं है अपितु मामला आँखिन (आँखों) देखा है यह वस्तुतः उनका अनुभूत सत्य है जिसे उन्होंने अध्यात्म की ऊँचाइयों को छूते हुए वाणी प्रदान की है। संजीवनी में दिव्यानन्द की स्रोतस्विनी प्रवाहित है। किनारे पर बैठ कर मौजों का नज़ारा देखना ही पर्याप्त नहीं है, तनिक डूब जाइये गहराइयों में आप अवश्य मौक्ति–कण पा लेंगे। भाई जी बराबर हमें निमन्त्रण दे रहे हैं और हम मन्द–बुद्धि जीव अनसुनी करके मामला टाल देते हैं, यही हमारा दुर्भाग्य है। हमारा दाहिना हाथ बायें हाथ को ठगने के फ़िराक़ (धुन) में रहता है। हम संसारी हैं, व्यवहारी हैं, व्यापारी हैं और न जाने क्या क्या ! मगर सब कुछ होते हुए भी हम जौहरी नहीं बन सके वे जिन्हें खरे और खोटे की

समझ है। इस समझ को पाने के हेतु साधना के पथ पर निरन्तर अभ्यासरत रहना परमावश्यक है । लल्लेश्वरी के शब्दों में :–

' दमुँ दमुँ कोरमस दमन आये
प्रज़ल्योम दीप तुँ ननेयम ज़ाथ
अन्दर्युम प्रकाश न्यबर छ़ोटुम
गटि रोटुम तुँ करऽमस थफ ।'
('ललद्यद'– नो'व एडीशन प्रो० जियालाल कौल; पृ० 174)

सवाल एक नहीं अनेक हैं लेकिन बात एक ही है जिसको जितनी द्रुत गति से हम समझे, ग्रहण करें, चिन्तन के आधार पर विचार करें और तर्क की तुला पर तौलें उतना ही हमारे लिये श्रेयस्कर होगा। 'भाई जी' के शब्दों में :–

'दारि बर त्रोपरिथ यल्यि छुस सुमराण
तेलि छुस सुमरान चोनुय नाव
अर्पण हमसूरुँय मँज़ छिम प्राण
त्यलि छुस सुमरान चोनुय नाव।
यख छुम लोगुमुत धर्मस तुँ कर्मस
अधर्मस मंज़ मन यीरान छुम
अऽती बुँ सरुँदान अऽती बुँ गरुँमान
त्यलि छ़ुस सुमरान चोनुय नाव।
सोपुँनस मँज़ ज़ाग्रत वुजुँनावान
संताप ताप दुँन्यिरावान छिस
संसार कौंलि पाप–पोन्य यीरुँ त्रावान
त्यलि छुस सुमरान चोनुय नाव
दारि बर त्रोपरिथ यल्यि छुस सुमरान।'
(संजीवनी–पृ० 232–33)

01 मई, 2002 ई०

शारदा गाँव, तीर्थ और विद्यापीठ

शक्तिचाप शरघण्टिका सुधापात्र–
रत्न कलशोल्लसत्कराम्।
पूर्ण चन्द्र वदनां त्रिलोचनां–
श्री शारदां नमत सर्वसिद्धिदाम् ।।

कश्मीर के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हैं – स्वामी अमरनाथ, चक्रेश्वरी शरिका देवी हारी पर्वत, तुलामूला में स्थित राज्ञण्या देवी (राज्ञी देवी) खिव में ज्वाला देवी, हन्दवाड़ा में भद्रकाली, उत्तरसू उमानगरी में उमादेवी, मार्तण्ड में सूर्यदेव एवं शारदा में स्थित शारदाबल (शारदा की स्थापना) या शारदा माता मन्दिर आदि। शारदा, कश्मीर के पश्चिम में स्थित सम्पूर्ण भारत के हिन्दुओं के प्राचीनतम तीर्थों में एक है।

शारदा गाँव श्रीनगर से 130 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है और मुज़फ्फराबाद से शारदा तक की दूरी लगभग 140 किलोमीटर है। यह गाँव ज़िला मुज़फ्फराबाद के तहसील अट्टमुकाम (Auttmuqam) में पड़ता है। हिन्दू राज्यकाल में शारदा गाँव दो कारणों से प्रसिद्ध था :–

अ) शारदा माता का निवास स्थान

आ) शारदा पीठ (शारदा अध्ययन केन्द्र)

आज शारदा माता का यह निवास स्थान पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के भू–भाग में आता है । यहाँ देश विभाजन के पूर्व हर वर्ष भाद्रपद (भादों का महीना) शुक्ल पक्ष अष्टमी के दिन वार्षिक उत्सव मनाया जाता था जिसका शुभारम्भ भाद्रपद शुक्लपक्ष चतुर्थी के दिन होता था। हज़ारों की संख्या में भक्त जन अखण्ड भारत के कोने–कोने से देवी दर्शन के हेतु आते थे। इसी दिन हरमुकुट गंगा पर भी वार्षिक

धार्मिक पर्व मनाया जाता है। इसीलिए भादों की शुक्ल पक्ष अष्टमी को गंगाष्टमी (गंग ॲठम) या शारदाष्टमी (शारदा ॲठम) कहते हैं। भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी को वैष्णव लोग भगवान श्रीकृष्ण की प्रेयसी राधिका जी का जन्मोत्सव मनाते हैं। इसलिये कहीं कहीं इसे राधाष्टमी भी कहते हैं।

o o o

कश्मीर में कुपवाड़ा से लगभग डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर दो गाँव हिन्दू सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से पर्याप्त चर्चित रहे हैं – टिक्कर एवं गुशी। टिक्कर से लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर शारदा गाँव किशन गंगा घाटी में पड़ता है।

हिन्दू राज्यकाल में शारदा का तीर्थ स्थल पर्याप्त ख्यातिप्रद रहा लेकिन काल चक्र के चलते स्थिति बदलती गई और ऐतिहासिक दुर्घटनाओं के कारण अल्पसंख्यकों को इस क्षेत्र से पलायन करना पड़ा। स्वतन्त्रता से पूर्व इस गाँव में कई पण्डित परिवार रहते थे जो या तो पुरोहित वर्ग से सम्बन्धित थे, या व्यापारी थे जो तीर्थ स्थान के निकट दुकानदारी करते थे और तीर्थ से जुड़े कुछ साधु–सन्त लोग और उनके शिष्य या सेवक भी यहाँ रहते थे।

देश विभाजन के समय देवी का यह शक्ति पीठ भक्त–जन–विहीन हो गया।

o o o

टिक्कर से शारदा तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। यात्री एवं भक्त जन टिक्कर से मुरहामा, मुरहामा से जमगण्ड और जमगण्ड से शारदा पहुँचते थे। अथवा दूसरे मार्ग पर चलकर टिक्कर से बटपोरा, बटपोरा से गुथाम डूर, गुथम डूर से थैयन (Thaijan) और थैयन से शारदा पहुँचते थे। संलग्न मार्ग दर्शक रेखा चित्र (कृपया साथ लगा रेखा चित्र देखिये) पाठकों की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये पर्याप्त होगा।
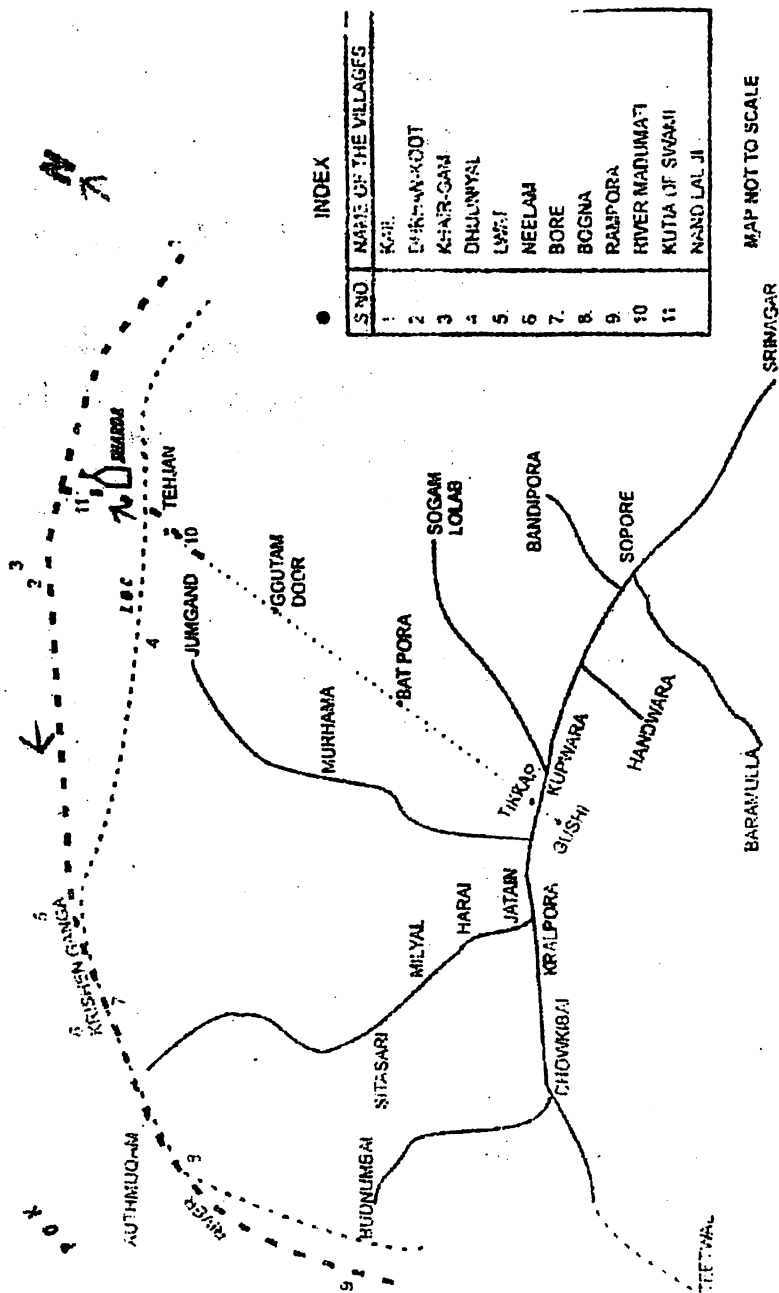
श्रीनगर से सोपुर, सोपुर से हन्दवाड़ा होते हुए टिक्कर–कुपवाड़ा पहुँचते हैं और फिर यहाँ से शारदा तक पहुँचने के विविध पहाड़ी मार्गों को देखा जा सकता है। तीसरा रास्ता मुज़फ़्फ़राबाद से सीधे अट्टमुकाम, तहसील के मुख्यालय से होता हुआ शारदा पहुँचता है। सन् 1947 ई0 से पहले कुछ लोग बारहमूला से उड़ी, उड़ी से मुज़फ़्फ़राबाद होते हुए शारदा पहुँचते थे । शारदा गाँव में स्थित शारदा माता का मन्दिर किशनगंगा (दरिया–ए–नीलम) के बाएँ किनारे पर वहाँ स्थित है जहाँ मधुमती नदी का मिलन किशनगंगा के साथ होता है।

o o o

संस्कृत भाषा में 'शारदा' शब्द सरस्वती एवं दुर्गा दोनों का वाचक है। एक प्रकार की वीणा (वाद्य यन्त्र) भी शारदा कहलाती है। सरस्वती तो ज्ञान, विवेक और विद्या की देवी है और दुर्गा सती या पार्वती का रूप है।

विश्वास यह है कि पार्वती ने ही देवताओं की प्रार्थना पर असुरों के संहार हेतु दुर्गा का रूप धारण किया। रू–रू नामक दैत्य के पुत्र दुर्ग का वध करने के कारण इनका नाम दुर्गा पड़ा।

प्राचीनकाल से ही कश्मीर ज्ञान, विद्या, तर्क एवं शास्त्र अध्ययन का केन्द्र रहा है। यही कारण है कश्मीर को शारदा पीठ (a seat) , शारदा भूमि, शारदा नगरी तक कहा गया हैं अभिप्राय यह है कि कश्मीर में शारदा को विद्या की देवी के रूप में ही ' नमस्तस्यै–नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः' कहते चले आये हैं।

भादों की अष्टमी को यहाँ पितृश्राद्ध भी होता था और अस्थि विसर्जन भी। यहाँ किशनगंगा और मधुमती का संगम (नदियों का मिलन) है।

o o o

इस तीर्थ के साथ कई पौराणिक कथाएँ जुड़ी हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख करना यहाँ असंगत नहीं होगा –

अ) भक्तजनों को विश्वास है कि देवताओं द्वारा समुद्र मंथन के बाद अमृतकलश से अमृतपान करके शेष बचा हुआ अमृत, कलश के साथ माता शारदा ने ग्रहण किया और षष्ठ भुजा रूप धारण करके अमृत कलश के साथ शारदा गाँव पहुँची और यहाँ अमृत कलश पृथ्वी के गर्भ में रखा और स्वयं समतल शिला रूप धारण करके उसे ढक लिया । इसी समतल शिला को देवी रूप मानकर लोग पूजा अर्चना करते रहे और परवर्ती काल में उसके ऊपर मन्दिर का निर्माण हुआ। अनुमान यह है कि हिन्दू राज्यकाल में दसवीं शती के आसपास सर्वप्रथम इस मन्दिर का निर्माण हुआ है। यह मत विवादास्पद है क्योंकि आठवीं शताब्दी ई० में राजा ललितादित्य के समय में भी शारदा मन्दिर का उल्लेख मिलता है। कुछ प्रमुख विदेशी यात्री कश्मीर आए, जिन्होंने अपने सफरनामों में शारदा मन्दिर का उल्लेख किया है। चीनी यात्री ह्यूनसांग 632 ई० में कश्मीर आए और दो वर्ष यहाँ रहे उन्होंने लिखा है कि शारदा में असाधारण प्रतिभावन और कुशाग्र बुद्धि के पण्डितों को स्वयं वे देख चुके हैं जिनका आध्यात्मिक चिन्तन में प्रशंसनीय योगदान रहा है।

आ) एक दिन महर्षि वसिष्ठ ने अपनी पत्नी अरुन्धती से पुत्रवती होने के हेतु माघमास में पूर्णमासी तक उपवास करके भगवान शिव की उपासना करने का सुझाव दिया यह बात किसी तरह एक निम्न जाति के एक व्यक्ति ने सुनी जो स्वयं पुत्र प्राप्ति के हेतु व्यग्र था। उसने भी अपनी पत्नी को उपवास रख कर शिवोपासना करने का सुझाव दिया। उन्हें सिद्धि प्राप्ति हुई और एक पुत्र–रत्न ने उनके घर में जन्म लिया जिसका नाम शांडिल्य रखा गया। कहते हैं ब्राह्मणों ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार करने से इन्कार किया और महर्षि वसिष्ठ के कहने पर वे भारत के उत्तराखण्ड में स्थित शारदा माता के दर्शनार्थ रवाना हुए। कुपवाड़ा से गुशी पहुँचे जहाँ उन्हें अनाहत नाद (योगियों

को सुनाई देने वाली एक आन्तरिक ध्वनि, ओम् नाद ध्वनि) सुनाई दिया और वे बटपोरा के मार्ग से गुथमडूर से होकर थैयान पहुँचे और शारदा के निकट कुंड में स्नान करने से उन का आधा शरीर सोने का हो गया और माता रानी के दर्शन पाकर सिद्ध पुरुष बन कर शांडिल्य मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्री श्री शैलस्थिता या, प्रहसित वदना,
पार्वती शूल हस्ता,
वह्नि सुर्येन्दुनेत्रा,
त्रिभुवन जननी, षड् भुजा सर्व शक्तिः।
शाण्डिल्येनोपवीता जयति भगवती
भक्ति गम्यानुयातां।
सा नः सिंहासनस्था ह्यभिमत फलदा
शारदा शं करोतु ।।

(श्री शारदा सहस्रनाम स्तोत्रम से उद्धृत)

The goddess Sharda is seated on an auspicious seat of stone, she has a smiling look, she resembles Parvati having sword in one of her arms and her eyes enlighten like Sun, Moon and Fire. She is the life of the three worlds, having six hands. She is entire energy. She has been invested with sacred thread by Shandaliya saint. Let us hail that cosmic light. She can be attained by devotion.

May she be giver of our desires and bestow peace - eternal on aspirants.

Translation by 'Suman'

भगवन् या महादेवी शारदाख्या सरस्वती ।
काश्मरस्यां स्वतपसा शाण्डिल्ये नावतारिता ।।
तस्या नाम सहस्त्रं मे भोगामोक्षैक साधनम् ।
साधकानां हितार्थाय वदत्वं परमेश्वर ।।

इ) कहते हैं कश्मीर के एक हिन्दू राजा महेशकर्ण (मनकन) ने यहाँ एक भव्य मन्दिर का निर्माण किया है। महेशकर्ण के विषय में

यह बात प्रसिद्ध है कि उनके दोनों कान भैंस के कानों के समान थे। वे मन ही मन अपने भद्दे रूप पर लज्जित थे। नाई के द्वारा उनके महिषी (महिषी सं० भैंस) (कश्मीरी – मॉश) कानों का समाचार जनता तक पहुँचा और इस कारण वे अधिक व्याकुल हो उठे। कहते हैं कि स्वप्न में उन्हें किसी दिव्यशक्ति ने शारदा पहुँचने का परामर्श दिया । वे माता की शरण पहुँचे और उनके दोनों कान मनुष्य–कर्ण में बदल गए इसीलिये कश्मीर में यह कहावत प्रसिद्ध है –

' मनकन राज़स मोशे कन
शारदायि यलि गछ़ि तेलि बलहन ।'

इस प्रकार शारदा ऋद्धि (सम्पन्नता) एवं सिद्धि प्राप्ति का देवीगृह (देव स्थान) माना जाता है।

' इष्टेश्वरी महादेवी सर्वभय विनाशनी ।
अष्ट सिद्धि महास्थानम् सिद्धयन्ति शारदे नमः।।'

o o o

जगतगुरु शंकराचार्य (8–9वीं शताब्दी) को भी माता के दर्शन यहाँ हुए थे। कश्मीर के शासक महाराजा ललितादित्य यहाँ दर्शन करने के लिये कई बार आये हैं । 13वीं शताब्दी ई० में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचाग्र रामानुज यहाँ पहुँचे हैं।

कश्मीर के प्रसिद्ध मुस्लिम शासक सुलतान ज़ैन–उल–आब्दीन (1420–1470 ई०, असली नाम शाही खान) भी यहाँ सफलता का वरदान पाने के हेतु दर्शनार्थ आए थे। इतिहासकार जोनराज ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि 1422 ई० में सुलतान ज़ैन–उल–आब्दीन शारदा देवी की यात्रा पर गए थे। डोगरा शासनकाल (1846–1947) में यह तीर्थ पर्याप्त प्रसिद्ध हुआ। इस युग में मन्दिर की प्रबन्ध–व्यवस्था सरकार के हाथ में थी। महाराजा गुलाब सिंह (1792–1856) ने इस तीर्थ के हेतु बहुत बड़ी जागीर दान की थी ताकि तीर्थ स्थान के

साथ–साथ शारदापीठ में अध्ययन कर रहे विद्वानों और छात्रों के निवास की भी समुचित व्यवस्था हो सके ।

प्रसिद्ध फ़ारसी विद्वान अलबरोनी (Alberuni) जिन्हें मुहम्मद गज़नी अपने साथ भारत लाया था और जो भारत के उत्तर–पश्चिम में कई वर्षों तक रहे और जिन का देहान्त 1048 ई० में 75 वर्ष की अवस्था में हुआ, ने अपनी पुस्तक 'तहक़ीक़–ए–हिन्द' में लिखा है कि भारत में हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थों में मुलतान के प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर के बाद शारदा मन्दिर का नाम आता है।

प्रसिद्ध अंग्रेज़ शोधकर्ता सर एम० ए० स्टेन (Sir M . A Stein) जिन्होंने कल्हण पण्डित की 'राजतरंगिणी' का अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा में किया और जो दो भागों में (Chronicles of the Kings of Kashmir) शीर्षक से सन् 1900 ई० में प्रकाशित हुआ, का मानना है कि शारदा मन्दिर की पूर्व दिशा में लगभग एक मील की दूरी पर समतल भू–खण्ड है जहाँ कुछ ऐतिहासिक भग्नावशेष (remains, ruins) भी मिले हैं, वहीं अध्ययन–अध्यापन का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र हिन्दू राज्यकाल में विद्यमान था जिसे कुछ लोग शारदा विश्वविद्यालय कहते हैं जहाँ वेद–शास्त्रों की विधिवत शिक्षा देने की पूर्ण व्यवस्था थी।

बंगाल के गौड़ ब्राह्मण एवं काशी के यशस्वी ब्राह्मण विद्या–प्राप्ति के हेतु एवं शास्त्राध्ययन के लिये यहाँ आते थे और यहाँ से विधिवत शिक्षा ग्रहण करके विशारद (कुशल, अनुभवी, विद्वान, learned) की डिग्री (उपाधि) पाकर लौट जाते थे।

o o o

इस महान विद्यापीठ में गुरुकुल परम्परा का दृढ़ता से पालन किया जाता था । देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से वेद, तर्कशास्त्र, योग–साधना, काव्य–शास्त्र, शैवमत, ज्योतिष विद्या, षट्दर्शन एवं शारदा–लिपि का अध्ययन करने के हेतु विद्वान यहाँ आते थे और निश्चित

समयावधि तक रह कर विद्यालाभ प्राप्त करते थे। पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक समाप्त करने पर प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी योग्यता का प्रमाण देना होता था। आज इसे ही मौखिक परीक्षा (viva-voce) कहते हैं। सफल स्नातकों को विद्यापीठ की ओर से 'विशारद' डिग्री प्रदान की जाती थी और इस हेतु दीक्षान्त समारोह (Convocation) का आयोजन प्रति वर्ष गौरीतृतीया (माघ शुक्ल पक्ष तृतीया) के दिन होता था। कल्हण पण्डित ने 12वीं शताब्दी ई० में अपनी 'राजतरंगिणी' (1148—49 ई०) में इस विद्यापीठ का विशद् वर्णन किया है।

डॉ० मैक्समूलर ने लिखा है कि शारदा पीठ भारत में ख्यातनाम संस्थान रहा है। लोग यहाँ भारतीय षट् दर्शनों का अध्ययन करने के हेतु भिन्न—भिन्न क्षेत्रों से आते थे। 13वीं शताब्दी में वेदान्त के महान विद्वान आचार्य रामानुज भी केरला प्रदेश से यहाँ आए थे। श्री एस० उन० ज़ाड़ू 'सुमन' ने अपने एक परिचय—पत्र में इस का उल्लेख किया है।

o o o

कश्मीरी पण्डितों द्वारा आविष्कृत एक स्वतन्त्र लिपि का नाम शारदा है जिसकी व्युत्पत्ति ब्राह्मी लिपि से हुई है। शारदापीठ के प्रवेश द्वार के निकट इस लिपि के लिपि—चिह्न एक विशाल समतल शिला—पट्ट पर उत्कीर्ण किये गये थे और प्रत्येक आगन्तुक की दृष्टि इन लिपि चिह्नों पर अवश्य पड़ती। इसी शारदा लिपि में लिखित सैंकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ आज हमें पूना (महाराष्ट्र) के 'भण्डारकर शोध संस्थान' में देखने को मिलते हैं। हज़ारों पाण्डुलिपियाँ मुस्लिम शासन काल में क्रूर शासकों द्वारा वितस्ता में बहा दी गईं और विस्थापन काल तक अर्थात् 1989 ई0 तक हज़ारों पाण्डुलिपियाँ घाटी के विविध इलाकों में पण्डितों के घरों में सुरक्षित थीं। विस्थापन के समय आतंकी हाहाकार में न पण्डित रहे और न रही उनकी यह संचित पूंजी।

महाराज अशोक (273 ई० पू० – 232 ई पू०) के राज्यकाल

से लेकर हिन्दू सम्राट महाराज ललितादित्य के राज्यकाल (724–761ई०) अर्थात् आठवीं शताब्दी ई० तक यह लिपि कश्मीर में प्रचलित थी और अध्ययन–अध्यापन का माध्यम थी। शारदा पीठ में प्रवेश पाते ही विद्यार्थियों को इस लिपि का ज्ञान कराया जाता था और इसी के माध्यम से विविध शास्त्रों और ज्ञान की अन्य शाखाओं का अध्ययन होता था। पाणिनि के विश्व प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' की सहज व्याख्या अर्थात् टीका के रूप में शारदा लिपि में 'कलाप' (संस्कृत व्याकरण का सार) नामक ग्रन्थ की रचना हुई है जो इस लिपि में लिख गया प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है ऐसा श्री एस० एन० ज़ाड़ू 'सुमन' ने 'शारदा का पवित्रतीर्थ 'नामक परिचय–पत्र में लिखा है। यह परिचय–पत्र अंग्रज़ी भाषा में है।

देश विभाजन के समय मन्दिर परिसर में एक भव्य पुस्तकालय एवं गोष्ठी–कक्ष मौजूद थे। पुस्तकालय में वेद, षट् दर्शन शिवमत एवं ज्योतिष विद्या से सम्बन्धित अलभ्य ग्रन्थ एवं शारदा लिपि में लिखित पाण्डुलिपियँ सुरक्षित थीं। पूर्वयोजित षड़यन्त्र के अन्तर्गत शताब्दियों से संचित इस ज्ञान भण्डार को नष्ट किया गया । समय के भीषण आघातों के परिणाम स्वरूप सब कुछ ध्वस्त हुआ। इस प्रकार हम कश्मीर के प्राचीनकालीन हिन्दू–इतिहास के प्रामाणिक तथ्यों से वंचित हो गए।

o o o

मन्दिर के चारों ओर ग्यारह फुट ऊंचा दीवार है जो किशनगंगा के किनारे से और भी अधिक ऊंची दिखाई देती है क्योंकि मन्दिर तनिक ऊँचाई पर पर्वत की टेकरी (ऊँची भूमि, छोटी पहाड़ी) पर स्थित है। मन्दिर तक 64 (चौंसठ) सीढ़ियाँ हैं जो 64 योगिनियों (64 देवियों) के नाम से जानी जाती हैं ऐसा स्वामी सच्चिदानन्द पुरी (सन्यास आश्रम बांडिपुर कश्मीर) का मानना है। मन्दिर परिसर के बीच में मुख्य मन्दिर स्थित है जिसका वास्तु–शिल्प (architecture) कश्मीर के अन्य

प्राचीन मन्दिरों के ही समान है। मन्दिर का मुख्य द्वार पश्चिम दिशा में है और भीतरी प्रवेश के हेतु सीढ़ियों का प्रयोग करना पड़ता है। भीतर मध्य में एक समतल सपाट शिला है जो सात फुट लम्बी और छः फुट चौड़ी है और छः इंच मोटी है। कहते हैं यही शिला उस अमृत–कुंड को ऊपर से ढक रही है जिसमें माता शारदा का वास है। यात्री यहाँ पहुँच कर इसी शिला को पूजते हैं और शिला देवी (माँ शारदा) के दर्शन पाकर सन्तुष्ट होते हैं। मन्दिर परिसर का मुख्य द्वार दक्षिण–पश्चिम की ओर स्थित है। शिलादेवी के परिसर में प्रवाहित जल–स्रोत (spring) के सम्मुख काली चट्टान पर माँ सरस्वती की प्रतिमा उत्कीर्ण थी जो हिन्दू राज्यकाल के भव्य मूर्ति–शिल्प का ऐतिहासिक साक्ष्य होने के साथ–साथ शारदा भूमि की बौद्धिक सम्पदा – तत्त्वज्ञान, व्यवहार ज्ञान, तर्क तथा विवेक–का प्रतीक चिह्न भी था। मन्दिर के भीतर समतल चट्टान के अतिरिक्त कोई मूर्ति नहीं है। सम्भवतः सारे भारत में यह पहला देवस्थान है जहाँ किसी भी देवी या देवता की मूर्ति नहीं है। यहाँ शारदा माँ के दर्शन समतल शिला में होते हैं और उसी शिला की पूजा भी होती है।

o o o

शारदा का मन्दिर षटकोणाकार है (hexa angular) जो माँ शारदा की छः अलौकिक शक्तियों अथवा गुणों का द्योतक है। यह छः शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :–

1. माँ सर्वव्यापक है।
2. माँ अपने आपे में परिपूर्ण दिव्य विभूति है।
3. माँ चेतना स्वरूप प्रज्ञा का साक्षात् रूप है।
4. माँ सर्व शक्तिमान है।
5. माँ असीम दिव्य शक्ति का अद्‌भुत भण्डार है।
6. माँ सर्व सिद्धिदायिन् है।

यही कारण है कि माँ षटभुजा है। माँ विशुद्ध ज्ञान और विवेक

की देवी है । प्रसन्न होकर भक्तजनों को विवेक प्रधान हंस बुद्धि का वरदान देती है ताकि वे सत् और असत् के मध्य विवेक की दृष्टि से स्पष्ट अन्तर देख सके। माँ शारदा का वाहन हंस है।

शब्दियों से कश्मीर ज्ञान और विज्ञान का आदि स्रोत रहा है। यहाँ के महान संस्कृत विद्वानों, काव्य शास्त्रियों, शैव दर्शन के पण्डितों, तर्क शास्त्र के सिद्ध पुरुषों, ज्योतिषाचार्यों एवं इतिहासज्ञों को कौन नहीं जानता।

माँ शारदा कश्मीर की इसी जाज्वल्यमान बौद्धिक सम्पन्नता का प्रतीक है। ज्ञान, विवेक और वाक्शक्ति ही ब्राह्मण की सब से बड़ी पूंजी है। निष्ठा और सतत साधना से ही वह माँ की अनुकम्पा का भागीदार बन सकता है क्योंकि माँ ज्ञान और विवेक का केन्द्रित शक्ति–स्रोत है।

o o o

भृंगीश (शिव) संहिता में भी इसी तरह का विशद् वर्णन हुआ है। दुर्गासप्तशती में शारदा के महात्म्य की सविस्तार चर्चा हुई है। इसे विद्या की देवी, ज्ञान का स्रोत, सर्वसिद्धि दायिनी महाशक्ति के रूप में स्वीकारा गया है। देवी माँ के गुणों की चर्चा 'शारदा सहस्रनामावली' के रूप में हुई है जिसका पुष्पार्चन करते अथवा यज्ञाहुति देते समय पाठ होता है। कलूसा बांडीपुर – कश्मीर में भी जगदम्बा शारदा माता का मन्दिर है जहाँ प्रति वर्ष भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन यज्ञ रचाया जाता था। यहाँ से भी 'सहस्रनाम पाठावली' का प्रकाशन स्वर्गीय गोविन्दानन्द जी के द्वारा हुआ है जिसके लेखक कलूसा के सर्वानन्द जी हैं। सन् 1994 ई० में विस्थापन के बाद स्वामी सच्चिदानन्द जी पुरी ने 'श्री शारदा सहस्रनामावली' को प्रकाशित करवाया है।

o o o

शारदा देव भूमि कई महान सन्तों, योगियों एवं तपस्वियों की तपस्या भूमि रही है। स्वामी लालजी महाराज तथा उनके महान शिष्य स्वामी नन्दलाल जी महाराज को यहीं पर सिद्धि प्राप्त हुई है। यह देवी माँ का ही वरदान था जिसे पाकर स्वामी नन्दलाल जी का जीवन धन्य हो उठा। स्वामी जी कश्मीर के कई महान सन्तों एवं महापुरुषों के पथ प्रदर्शक एवं साधना गुरु रहे हैं जिनमें स्वामी क्रालबब, स्वामी मस्तराम एवं स्वामी विभीषण जी उल्लेखनीय हैं। स्वामी नन्द लाल जी अपनी कृपादृष्टि एवं सुहृद् व्यवहार के कारण इलाके में पर्याप्त चर्चित रहे हैं और हिन्दुओं के अतिरिक्त सैंकड़ों मुसलमान उनके आश्रम में आकर मनोकामना सिद्धि का वरदान पाते।

स्वामी आफ़्ताब जी भास्कर (देहान्त 1960 ई०) जो कारिहामा ज़िला कुपवाड़ा के निवासी थे, को माता शारदा के चरणों में रह की ही दिव्य ज्योति का आभास हुआ है। वे लगातार वर्षों माता की सेवा में रत रहे और पूरी निष्ठा और संकल्प के साथ साधना के विभिन्न पड़ावों से होते हुए चरमसीमा की ओर उन्मुख हुए।

o o o

शारदा के आस–पास के गाँव में गुर्जर और पहाड़ी लोग रहते थे। लेकिन उन्हें भी शिला देवी के इस शक्तिपीठ पर अटूट विश्वास था और फ़स्ल की कटाई के समय वे मन्दिर परिसर में माता के नाम पर अनाज (यथा शक्ति) छोड़ आते थे। कृष्ण गंगा में गाय के शुद्ध दूध का विसर्जन करते थे और मन्दिर के पुजारियों और भक्तजनों के लिये भी छोड़ आते ।

सामान्य मुस्लिम जन समुदाय के अतिरिक्त कई मुसलमान सन्त फकीर भी यहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के हेतु तथा शिला देवी के दर्शनार्थ आते और कुछ दिन इस परम धाम में निवास करके लौट जाते। शैव पण्डितों के 'सहजभाव' ने उन्हें भी मोह लिया था।

o o o

देश विभाजन के पश्चात् इस पावन तीर्थ स्थल की क्या दशा रही है कुछ ज्ञात नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि इच्छुक भक्तजनों को भविष्य में यहाँ यात्रा के हेतु जाने की अनुमति मिल जाये ताकि इस सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करते हुए हम देवी माँ के चरणों पर श्रद्धा के सुमन अर्पित कर सकें।

थैयन से शारदा की दूरी 5 किलोमीटर से अधिक नहीं लेकिन यह हमारा कितना दुर्भाग्य है कि हम युद्ध विराम रेखा के इस पार थैयन तक जा सकते हैं लेकिन केवल पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित थैयन से युद्ध विराम रेखा के उस पार नहीं जा सकते। माँ के दरबार में हर वर्ष हाज़िरी देने का अवसर मिल सके, राजनीतिक स्तर पर इस दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता है । यदि देश के सिक्ख बन्धु जत्थों में हर वर्ष नानकाना साहब की यात्रा पर पाकिस्तान जा सकते हैं तो हिन्दुओं का शारदा जाने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

o o o

शारदा का अपना भव्य इतिहास है। प्राचीनकाल का एक पावन तीर्थ स्थल, दिव्य शक्तियों का शक्तिपीठ, ऋषि मुनियों की तपस्या भूमि, ब्रह्म ज्ञानी समाज की ज्ञान साधना का प्रमुख केन्द्र, शिला देवी का तीर्थ, किशन गंगा और मधुमती के संगम का साक्ष्य आज खण्डहरों में जी रहा है। जाने कब इतिहास करवट बदल लेगा और पतझड़ी यादों में बहार खिल उठेगी। वह युग निस्सन्देह हमारे सांस्कृतिक पुनर्जन्म का युग होगा जब वेद मन्त्रों के पावन उच्चारण से दिशायें गूंज उठेंगी और अनलहक नाद से वातावरण आनन्द रस छलकाता प्रतीत होगा।

नमस्ते शारदे देवि काश्मीर पुरवासिनी
त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यां ज्ञानञ्च देहि मे ।।

29.7.2003

कश्मीरी रामायण

(विकास–यात्रा के विभिन्न पड़ाव)

सगुण भक्ति के क्षेत्र में कश्मीर के भक्तजनों की अनन्य भक्ति का प्रमुख आधार जहाँ दशरथ सुत राम रहे हैं वहाँ विभिन्न युगों में राम–कथा ने यहाँ के प्रबुद्ध रचनाकार को भी सर्जना के लिय प्रेरित किया है और निस्सन्देह आज भी नया कवि नये सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में रामकथा के विभिन्न प्रसंगों को नई सम्भावनाओं के साथ प्रस्तुत कर रहा है। कश्मीरी रामभक्त कवियों ने क्षेत्रीय विश्वासों, परम्पराओं, मान्यताओं और लोक–विश्रुत जन–श्रुतियों अथवा जन संस्कृति के आधार पर राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप के प्रति पूर्ण समर्पित होकर तथा स्वदेशी अथवा विदेशी काव्य–शैलियों को अपना कर राम काव्य को विस्तार प्रदान किया है।

o o o

कश्मीरी लोक साहित्य में विशेषकर लोकगीतों में रामकथा के कई प्रमुख पात्रों एवं घटनाओं का उल्लेख मिलता है। कश्मीरी पण्डितों के विवाह गीतों में तो लगभग हर धार्मिक कृत्य अथवा सामाजिक प्रथा के साथ ये पौराणिक/ऐतिहासिक नाम जुड़ गये हैं । वर के पिता के लिये राजा दशरथ और वधू के पिता के लिये महाराजा जनक का सम्बोधन दोनों को गौरवान्वित कर देता है। घर लीपने के दिन जब घर की मालिकिन अपने मायके विवाह की सूचना देने जाती है तो :–

"कौशल्या माता दपने द्राये, गोडन्यथ माल्युन गरुँ चाये
तति नून अतँगत चोचि ह्यथ आये, दशरथ राजुन गरुँ चाये
दपने द्रायिखय दछि डूरय मंज़िये, अछिदॉरय यज़मन बॉयिये।।

o o o

पण्डित प्रकाशराम भट्ट कुरिगामी कश्मीरी रामकाव्य के प्रथम जाने माने कवि हैं जिन्होंने रामकथा पर आधारित महाकाव्य 'रामावतार चर्यत' (प्रकाश रामायण) लिखा। डा० बलजिन्नाथ पण्डित ने 'रामवतार चर्यत' का सम्पादन कार्य जम्मू–कश्मीर कल्चरल अकादमी के तत्त्वाधान में पूरा किया और रचना सन् 1965 ई० में प्रकाशित हुई। पुस्तक की भूमिका में डॉ० साहब ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि प्रकाशराम ने अपना रामायण सं0 1904 तदनुसार सन् 1847 ई० में लिखा है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्रकाशराम का जन्म 19वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। ग्रियर्सन महोदय ने अनधिकार चेष्टा करके कितना विवाद फैलाया था।

प्रकाशराम की लोक प्रसिद्धि का मूल कारण है – 'रामावतार चरयत' जो फ़ारसी भाषा की 'रज़मिया–मस्नवी' शैली में लिखा हुआ एक वर्णनात्मक कथा काव्य है। प्रोफ़ेसर जे० एल० कौल के विचारानुसार फ़ारसी रज़मिया शैली में लिखी हुई कश्मीरी साहित्य में यह पहली रचना है।[1]

सम्पूर्ण रामायण में कश्मीर का लोक जीवन प्रतिबिम्बित है। वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण का स्पष्ट प्रभाव ग्रहण करने के साथ–साथ कवि ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा कथा प्रसंगों को नये आयाम प्रदान किये हैं।

प्रकाशराम के 'रामावतार चरयत ' में सम्पूर्ण राम कथा दो अक्षों पर एक साथ गतिमान है।[2] राम के अवतारी रूप अथवा अतिमानवीय रूप से सबन्धित कथा तथा दशरथ सुत के जीवन चरित से सम्बधित कथा । मूल कथा परम्परागत रूप से कई कांडों में विभाजित है। प्रकाश रामायण में सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न रावण की पुत्री है जिसे ज्योतिष–पण्डितों की भविष्य–वाणी जन्म लेते ही घोर संकट में डाल देती है। पुरुष–प्रधान समाज द्वारा नारी अत्याचार का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। प्रस्तुत रामायण में मंथरा (कुब्ज़ा) के बदले इन्द्र

के आदेश पर सरस्वती कैकेयी के मन में वैमनस्य के बीज बो देती है। इसी प्रकार शूर्पनखा प्रसंग सीता हरण की भूमिका में प्रस्तुत हुआ है।

o o o

कश्मीरी रामकाव्य के इतिहास में दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना है – 'शंकर रामायण' । मूलतः यह रचना शारदा लिपि में लिखी गयी थी लेकिन यह प्रति आज उपलब्ध नहीं है। देवनागरी लिपि में लिखित इस रामायण की एक पाण्डुलिपि श्रीनगर की रिसर्च लाइब्रेरी में उपलब्ध है।[8] यह रचना डोगरा शासक महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में सन् 1870 ई० में कवि पण्डित शंकर कौल ने लिखी है । इस रचना के 44 अध्याय हैं और कवि ने इसे गीति–शैली में लिखा है । शिव–पार्वती के पारस्परिक संवाद द्वारा कथा का विकास दिखाया गया है। सम्पूर्ण रामायण पाँच काँडों में विभक्त है और अन्तिम तीन खण्डों के क्रमशः युद्ध खण्ड, उत्तर खण्ड तथा लव–कुश खण्ड शीर्षक भी दिये गये हैं। शताब्दियों से कश्मीर संस्कृत अध्ययन–अध्यापन का प्रमुख केन्द्र रहा है और यहाँ के भक्ति कवियों पर संस्कृत भाषा और साहित्य का, भारतीय दर्शन और चिन्तन का तथा प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों एवं मान्यताओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, पण्डित शंकर कौल इस के अपवाद नहीं हैं।

o o o

'शंकर रामायण' के पश्चात् कश्मीरी भाषा में 'आनन्द रामावतार चऱ्यत' पण्डित आनन्दराम राज़दान (त्रिछ़ल, पुलवामा–कश्मीर के मूल निवासी) ने लिखा । यह रामायण फ़ारसी लिपि में लिखा गया है और इस की पाण्डुलिपि विस्थापन से पूर्व राज़दान साहब के परिवार जनों के पास सुरक्षित थी। पण्डित आनन्द राम के विषय में प्रसिद्ध है कि वे स्वयं वैष्णव भक्त थे और श्रीराम के अनन्य उपासक। सम्पूर्ण रामायण को विभिन्न कांडों में न बाँट कर उन्होंने प्रमुख शीर्षकों के अन्तर्गत सम्पूर्ण रामकथा को पद्यबद्ध किया है। राज़दान साहब की

लेखनी पर फ़ारसी भाषा का काफ़ी प्रभाव देखने को मिलता है। सर्वसामान्य जनभाषा का व्यवहार न करके उन्होंने फ़ारसी अरबी शब्द–बहुल एक मिश्रित भाषा का व्यवहार किया है। यहाँ तक कि रामायण के अन्त तक पहुँचते–पहुँचते वे शुद्ध फ़ारसी भाषा में राम–भजन लिख डालते हैं। राज़दान साहब ने जन विश्वासों एवं लोक मान्यताओं के आधार पर रामायण के कथानक का गठन किया है। लोक विश्वास का पालन करते हुए उन्होंने सीता को रावण की पुत्री के रूप में ग्रहण किया है। अधिकांश कश्मीरी रामायणों में सीता रावण की पुत्री के रूप में ही स्वीकृत हुई है।

प्रस्तुत रामायण में फ़ारसी रज़्मिया मस्नवी शैली एवं गीति–शैली दोनों का समन्वय देखने को मिलता है। प्रस्तुत रामायण का रचना काल सन् 1888 ई0 माना जाता है। मूल हस्त लिखित प्रति में स्वयं कवि ने रचना काल का संकेत किया है।[4] परन्तु डॉ० ओमकार कौल को रामयण की जो प्रति प्राप्त हुई है उसमें उन्हें तिथि का कहीं उल्लेख नहीं मिला है। [5]

कश्मीरी भाषा के राम काव्य के इतिहास में पण्डित विष्णु कौल (सन् 1875—1940ई०) कृत 'विष्णु प्रताप रामायण ' अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। पण्डित विष्णु कौल व्योस (अनन्तनाग – कश्मीर) गाँव के निवासी थे। इनका वास्तविक नाम पण्डित विश्वम्भरनाथ कौल था । पण्डित जी फ़ारसी भाषा में 'अनादिल' उपनाम से लिखते थे। 'विष्णुप्रताप रामायण' का रचना काल सन् 1909—1914 ई० है। 941 पृष्ठों का हस्तलिखित यह रामायण लगभग 3000 (तीन हज़ार) चरणों में विभाजित है तथा इसके 347 अध्याय हैं। ये अध्याय मुख्य रूप से सात काण्डों में इस प्रकार विभाजित हैं – बालकांड, बनवास कांड, लंका कांड, अयोध्या कांड, अश्वमेध कांड, राजलीला कांड तथा वैकुण्ठ कांड । इसके अतिरिक्त बनवास कांड में ही किष्किंधा कांड का भी उल्लेख मिलता है। पण्डित विष्णु कौल पहले कश्मीरी रामभक्त कवि हुए हैं जिन्होंने तुलसीकृत 'रामचरित मानस' से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की

है। पण्डित जी स्वयं एक सच्चे राम भक्त थे। प्रत्येक कांड में अनेक लीलाएँ, भजन एवं भक्तिपरक गीत लिख कर कवि ने श्री राम को विष्णु के अवतार के रूप में ग्रहण किया है। इस रामायण की हस्तलिखित प्रति फ़ारसी लिपि में है तथा कवि ने स्वयं अपने हाथ से लिखी है। रामायण दो भागों में विभक्त है। अप्रकाशित अवस्था में यह महाकाव्य स्वर्गीय कवि के पुत्र श्री ओमकार नाथ कौल (हरिसिंह हाई स्ट्रीट श्रीनगर – कश्मीर के निवासी – विस्थापन से पूर्व) के पास बहुत समय तक सुरक्षित था। सन् 1984 ई० में श्री ओमकार नाथ कौल अपने यशस्वी पुत्र श्री रमेश कौल के पास रामायण की हस्तलिखित प्रतियों के साथ सिंगापुर चले गये जहाँ अक्तूबर 1989 ई० में उन का देहान्त हुआ ।

o o o

कश्मीरी राम काव्य के इतिहास में पण्डित नीलकंठ शर्मा (सन् 1888–1971 ई०) का योगदान भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रहा है। शर्मा जी ने रामकथा पर आधारित कश्मीरी भाषा में दो रचनाएँ लिखी हैं– 'रामायणि शर्मा' और 'राम चऱ्यत' । 'रामायणि शर्मा' महाकाव्य कवि के सात वर्षों (सन् 1919–1926 ई०) की अथक साधना का परिणाम है।[6] इस रचना के कुछ अंश प्रकाशित हो चुके हैं। स्वयं शर्मा जी एक अनन्य राम भक्त थे और तुलसी कृत 'रामचरित मानस' का उनकी सर्जना पर गहरा प्रभाव पड़ा हैं । उनकी भक्ति का प्रमुख आधार दास्य भाव है। राम–नाम की महिमा का बखान कवि ने रामायण में बड़ी तन्मयता के साथ किया है। लोकगीतों की शैली पर शर्मा जी ने रामायण में सुन्दर गीतों की सृष्टि भी की है। अपने गहन चिन्तन के आधार पर उन्होंने ब्रह्म, जीव और जगत के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया है। यह महाकाव्य निम्नलिखित आठ कांडों में विभाजित है – बाल कांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किंधा कांड, सुन्दर कांड, लंका कांड, उत्तर कांड, और लव–कुश कांड । 'रामायणि शर्मा'

में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि रावण मूलतः असली सीता का हरण नहीं कर पाता क्योंकि राम ने उसे अग्निदेव की सुरक्षा में छोड़ दिया था। सीता का भ्रमात्मक छाया रूप ही रावण के विनाश का कारण बन जाता है। इसी प्रकार प्रस्तुत रामायण में अहिरावण प्रसंग भी एक नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। शर्मा जी के रामायण की एक विशेषता यह भी है कि यह महाकाव्य लोक–विश्रुत जन कथा पर आधारित न होकर 'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरित मानस' के साथ–साथ 'अध्यात्म रामायण' में वर्णित कथा प्रसंगों पर आधारित है।

'रामचरस्यत' एक संक्षिप्ताकार की रचना है जिस को शर्मा जी ने सन् 1913 ई० में लिखा है। राम काव्य के क्षेत्र में यह उनका प्रथम प्रयास था। वस्तुतः कवि को प्रसिद्धि 'रामायणि शर्मा' के द्वारा ही प्राप्त हुई है।

विस्थापन के बाद यह हस्तलिखित महाकाव्य श्रीनगर से जम्मू पहुँचा । शर्मा जी के यशस्वी पुत्रों (प्रो० जे० एन० शर्मा एवं श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप') द्वारा इसके प्रकाशन की यदि व्यवस्था होती जो शर्मा जी की रचनात्मक क्षमताओं का सम्यक् मूल्यांकन हो पाता।

o o o

वीरक्युम (कुकर नाग–कश्मीर) के मूल निवासी पण्डित ताराचन्द ने 'ताराचन्द रामायण' (दो भागों में) सन् 1926–27 ई० में लिख है। यह रामायण फ़ारसी लिपि में लिखा गया है और आज तक अप्रकाशित अवस्था में है। विस्थापन से पूर्व उनके परियार जनों के पास सुरक्षित था, विस्थापन के बाद कुछ ज्ञात नहीं। प्रस्तुत रामायण आठ कांडों में विभक्त है और प्रत्येक कांड के कई अध्याय है। यह रामायण लोक कथा और जनश्रुति पर आधारित है। सम्पूर्ण राम कथा को कश्मीरी परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है अतः इस लोक रंग

से पौराणिक–ऐतिहासिक राम कथा लोक मानस के हेतु सतत प्रवाहित अमृत धारा का रूप धारण कर लेती है ।

भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत रामायण बेजोड है। कवि ने शुद्ध और ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग करके इसे संस्कृत और फारसी की दासता से मुक्त करने का प्रयास किया है। राम कथा में लीलाएँ एवं भक्ति परक गीत जोड़ कर कवि निजी विश्वास के आधार पर अपने भक्त–हृदय को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

o o o

श्री अमरनाथ 'अमर' (मूल निवासी अनन्तनाग) ने सन् 1950 ई० में 'अमर रामायण' की रचना की । यह रामायण भी फ़ारसी लिपि में लिखा गया है और इसकी हस्तलिखित प्रति लेखक के घर में सुरक्षित थी। विस्थापन के बाद कुछ ज्ञात नहीं कि आज इस रामायण की पांडुलिपि कहाँ है। प्रस्तुत रामकाव्य में विभिन्न कांडों अथवा अध्यायों का विभाजन देखने को नहीं मिलता अपितु रामकथा धारा–प्रवाह रूप में अन्त तक प्रवाहित दिखाई देती है। कवि ने रामकथा को कई आधुनिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। गान्धी जी के हरिजन आन्दोलन से प्रभावित कवि अछूतोद्धार आन्दोलन को नवीन बल एवं शक्ति प्रदान करने के हेतु 'राम–शबरी' प्रसंग को एक नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं । उसे विश्वास है कि वर्तमान रेगिस्तानी जीवन में हम अपने सांस्कृतिक विरसे के बल पर जीवन–दायिनी अमृधारा प्रवाहित कर सकते हैं। कवि उसी अमृतधारा को रामकथा में तलाशने का प्रयास करते हैं।

इस रामायण की एक और विशेषता यह है कि कवि ने रचना के आरम्भ में वाल्मीकि का जीवन चरित संक्षेप में प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रयास किसी और कश्मीरी राम भक्त कवि ने आज तक नहीं किया है। स्पष्ट है कि वाल्मीकि को एक महान ऋषि के रूप में मान्यता देकर

कवि वस्तुतः अपने प्रेरणा–स्रोत के प्रति आभार व्यक्त कर रहे हैं। रचना में फ़ारसी मिश्रित कश्मीरी भाषा का व्यवहार किया गया है। कहीं कहीं कवि आज की उलझी हुई समस्याओं का विश्वसनीय हल ढूँढने के हेतु अपने पौराणिक – ऐतिहासिक – सांस्कृतिक विरसे का पुनः निरीक्षण करने बैठ जाता है।

o o o

प्रबन्ध रचनाओं के अतिरिक्त समय समय पर कश्मीरी भक्त कवियों ने श्रीराम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप से प्रेरित और प्रभावित होकर मुक्तक रचनाएँ भी लिखी हैं। ये रचनाएँ लीला, गीत, भजन और लोकगीतों की शैली में मुख्य रूप से लिखी गई हैं। ऐसी भक्ति परक मुक्तक रचनाएँ लिखने वालों में स्वामी परमानन्द (सन् 1791–1879ई०) पण्डित लक्ष्मण जू रैणा 'बुलबुल' (सन् 1826–1898 ई०) तथा पण्डित कृष्णजू राज़दान (सन् 1850–1926 ई०) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भले ही ज्ञान, चिन्तन, दर्शन अथवा विचार की गरिमा हमें इन रचनाओं में कहीं कहीं देखने को मिले लेकिन राम कथा–काव्य के इतिहास में इन कवियों का कोई विशेष योगदान नहीं रहा है।

o o o

कश्मीरी राम कथा के इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं :–

1. अधिकांश कश्मीरी राम काव्य आज तक अप्रकाशित हैं। जिन लोगों के पास इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ अथवा पाण्डुलिपियाँ मौजूद हैं वे कई कारणों से इनके प्रकाशन की व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं।
2. रामायण के विभिन्न प्रसंगों को लोक विश्वासों के आधार पर नव–रूप प्रदान करने हेतु इन कवियों ने कथा तत्त्व में मौलिक

नवीन अंश जोड़ दिये हैं और कहीं कथा प्रसंग को समकाल के समानान्तर प्रस्तुत किया है। इसे यदि 'राम कथा में 'कश्मीरियत' कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा।

3. इन रामकथा काव्यों में कश्मीर का प्राकृतिक वैभव, लोक–विश्वास, जन श्रुतियाँ एवं लोक मान्यताएँ प्रमुख रूप से चित्रित हैं। जब तक इन रचनाओं का गहन अध्ययन नही किया जायेगा तब तक सम्पूर्ण भारत के राम काव्य का इतिहास अपूर्ण होगा। फ़ादर क़ामिल बुल्के[7] ने इनमें से मात्र एक या दो रचनाओं का सरसरी हवाला देकर कैसे सन्तोष प्राप्त किया, यह समझ में नही आ रहा है।

4. कश्मीर में वैष्णव भक्ति (विशेष कर राम भक्ति) का क्या रूप रहा है और इसके विकास में यहाँ के सर्जनात्मक कलाकार का क्या योगदान रहा है – इसकी सम्यक् जानकारी इन रचनाओं के द्वारा प्राप्त होती है। यह सत्य है कि वैष्णव भक्ति पर आधारित साहित्य (काव्य) की कोई अति–प्राचीन परम्परा हमें कश्मीरी भाषा में देखने को नहीं मिलती है क्योंकि कश्मीर शताब्दियों से शैवमत का प्रमुख प्रभाव–क्षेत्र रहा है लेकिन पिछले दो सौ वर्षों के साहित्य के इतिहास में हमें सगुण वैष्णव भक्ति पर आधारित पर्याप्त साहित्य देखने को मिलता है। दुर्भाग्यवश इस साहित्य का अधिकांश भाग अप्रकाशित है अथवा विस्थापन के बाद आज उपलब्ध नहीं है।

5. विकासोन्मुख कश्मीरी भाषा के विभिन्न रूप हमें इन रचनाओं में देखने को मिलते हैं। शुद्ध ठेठ कश्मीरी भाषा, संस्कृत गर्भित कश्मीरी भाषा, फ़ारसी मिश्रित कश्मीरी भाषा तथा अरबी–फ़ारसी–तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्द प्रयोगों से बोझिल कश्मीरी भाषा। केवल शब्द–प्रयोगों के आधारपर यदि इन रचनाओं का अध्ययन किया जाये तो भाषा–वैज्ञानिक

दृष्टि से कश्मीरी भाषा के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। इस प्रकार भाषा और शैली की दृष्टि से इन रचनओं का अध्ययन पर्याप्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

6. मौलिक उद्भावनाओं की दृष्टि से, पात्र योजना एवं कथा विस्तार की दृष्टि से, संवाद योजना की दृष्टि से तथा भक्ति-रस प्रधान लीलाओं के सर्जन की दृष्टि से इन रामायण ग्रन्थों का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

7. दिव्य अवतारी रूप श्रीराम सामान्य मनुष्य की तरह जीवन के व्यवहार क्षेत्र में एक आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहिल भ्रातः, अनुरक्त पति, प्रिय बन्धु, विश्वसनीय सखा और न्यायपालक प्रजा-रक्षक राजा के रूप में हमें इन रचनाओं में देखने को मिलते हैं। कहीं कहीं उनका सहज मानवनीय रूप उनके अलौकिक रूप से कहीं अधिक सुन्दर, विश्वसनीय और आकर्षक दिखाई देता है।

8. कश्मीरी रामकथा काव्य में सीता का व्यक्तित्व सब से अधिक सशक्त एवं आकर्षक दिखाई देता है। वह भूमि का अवतार है सम्भवतः इसी लिये हर तरह का अत्याचार सहने के लिये विवश। लौकिक धरातल पर वह एक पतिव्रता भारतीय नारी है जो हर स्थिति में अपने पति के संग रह कर पातिव्रत धर्म का पालन करते हुए जीवन-निर्वाह करना चाहती है। उसके जीवन के साथ जुड़ा अग्नि- परीक्षा का प्रसंग नारी-अभिशाप का क्रूरतम प्रसंग है। कहीं उसे दो-दो बार भी अग्नि परीक्षा देने को कहा जाता है। पुरुष के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना उसके मानस को अधीर बना देती है। यही क्रुद्ध रूप कश्मीरी राम-कथा काव्य में वर्णित सीता के चरित्र को एक नया आयाम प्रदान करता है। वह अन्यायी पुरुष के तथाकथित जन्मसिद्ध अधिकार पर ठोकर मार देती है। कितना महान है उस का यह विद्रोही रूप।

9. कई कश्मीरी राम भक्त कवियों ने फ़ारसी भाषा की 'रज़्मिया–मस्नवी' शैली को रामायण के हेतु प्रयोग में लाया है। कहीं मस्नवी शैली और गीति–शैली का समन्वय देखने को मिलता है। मस्नवी शैली में मुख्य रूप से राम कथा वर्णित है तथा भक्ति–स्तुति परक गीतों और लीलाओं के लिये गीति–शैली का प्रयोग किया गया है।[8] समस्त कश्मीरी मस्नवी काव्य के इतिहास में प्रकाश राम के 'रामवतार चरित' का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि कश्मीरी रामकथा काव्य का सम्पूर्ण भारत के रामकथा काव्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान है। अयोध्या के मूल निवासी श्रीराम अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ कश्मीर की सुरम्य घाटियों में लीला–मग्न दिखाई देते हैं। यहाँ का सगुण भक्ति कवि रामकथा को अपने परिवेश के साथ जोड़ देता है यहाँ तक कि राम–सीता विवाह भी कश्मीरी पण्डितों द्वारा आयोजित विवाह का अद्‌भुत रूप धारण कर लेता है। रामकथा में कश्मीरियत शाहतोस (बहुमूल्य महीन पशमीने का शाल) पर तिल्लाकारी (कलाबत्तू का काम) के समान खिल उठती है।

कथ्य और शिल्प, भाव और भाषा, लौकिक और अलौकिक, भक्ति और राग, लोक और परलोक, समर्पण और विश्वास, नीति और अनीति, धर्म और दर्शन सभी दृष्टियों से कश्मीरी राम–काव्य न केवल महत्त्वपूर्ण है अपितु अनुपम भी है। यह एक हकीकत है, अतिश्योक्ति नहीं।

27.09.2003

संदर्भ–संकेत

1. 'स्टडीज़ इन कश्मीरी' – जे० एल० कौल – कपूर ब्रदर्स (प्रकाशक) श्रीनगर–कश्मीर– सन् 1968 ई० – पृ0 61
2. "वस्तुत: कृति में राम कथा दो अक्षों पर गतिमान है। उसका एक अक्ष अलौकिक और आध्यात्मिक है तो दूसरा मानवीय और लोक सामाजिक।" 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' – डॉ0 शशिशेखर तोषखानी – पृ० 141
3. 'कश्मीरी और हिन्दी राम काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' – डॉ० ओंकार कौल – बाहरी पब्लिकेशनज़ प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, सन् 1974 ई० प्राक्कथन–– पृ० VI
4. 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' – डॉ0 शशिशेखर तोषखानी – पृ० 160
5. 'कश्मीरी और हिन्दी रामकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन' डॉ० ओमकार कौल–पृ० 90.
6. 'हमारा साहित्य' 1964 ई० – सम्पादक : नरेन्द्र खजूरिया – जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – लेख – 'कश्मीरी काव्य में राम भक्ति' – पृथ्वीनाथ 'मधुप' पृ०–186
7. कामिल बुल्के (सन् 1909 ई० – 1984 ई०) 'राम कथा – उत्पत्ति और विकास' – फ़ादर कामिल बुल्के – सन् 1950 ई० प्रकाशन। रांची के सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज में हिन्दी और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे।
8. 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' – डॉ० शिबन कृष्ण रैणा – सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली–7, सन् 1972 ई० प्रकाशन – पृ० 141

पं० कृष्णजू राज़दान का
'शिव परिणय'
(अनुसंधित्सु की नज़र में)

शिव शक्ति की प्रणय–कथा ने पण्डित कृष्णजू राज़दान (सन् 1850 ई० –1926 ई०) को विशेष रूप से मोह लिया था। विभिन्न उप–शीर्षकों के अन्तर्गत उन्होंने इस सूक्ष्म कथासूत्र को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। यहाँ अनेकों पौराणिक सन्दर्भ, मिथकीय पात्र, जन–श्रुति और लोक विश्वास पर आधारित घटनाएँ, परम्परागत मान्यताएँ एवं विश्वास भक्त कवि को सर्जन के लिये प्रेरित करते हैं। दक्ष प्रजापति का यज्ञ, उमा का अग्नि समर्पण, हिमालय की कथा और पार्वती का जन्म, सती के द्वारा शिव की तलाश, शिव का रूप बदल कर उपस्थित होना और गौरी के प्रेम की परीक्षा लेना, जोगी और पार्वती के बीच बहस, शिव–पार्वती के विवाह का निर्णय, दूल्हा का विरक्त जोगी रूप, मीनावती का विलाप और शिव की स्तुति, शिवजी का प्रसन्न होकर आनन्दमय रूप धारण कर पार्वती को वरण करना, लग्न और पुष्प पूजा, विदाई से पूर्व स्वर्ण हिमपात आदि प्रमुख घटनाओं के आधार पर 'शिव परिणय' की सृष्टि कवि ने की है। शैवमतानुयायी कश्मीरी पण्डितों के लोक–विश्वासों की अत्यन्त मनमोहक अभिव्यक्ति इस वर्णनात्मक कथा–काव्य के माध्यम से हुई है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'शिवपरिणय' की कथा में स्थानीय रंग निखर कर सामने आया है। यहाँ तक कि शिवरात्रि का महात्म्य भी कवि के आकर्षण का केन्द्र बन कर उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा को महिमा मंडित बना देता है। कवि ने कश्मीरी पण्डितों के घरों में सम्पन्न होने वाले विवाह–उत्सव के लगभग समस्त सामाजिक एवं

धार्मिक अनुष्ठानों का विशेष ध्यान रखा है। बारात का उचित स्वागत–सत्कार, लग्न से पूर्व द्वार पूजा, लग्न पर कन्यादान, पुष्प पूजा, अग्नि के फेरे, विभिन्न देवी देवताओं को साक्षी मान कर वर द्वारा वधू को वरण करने की प्रतिज्ञा, अग्निहोत्र, दूल्हा को 'मननमाल'[1] बान्धना, विदाई की तैयारी और इन समस्त सामाजिक–धार्मिक अनुष्ठानों पर स्त्रियों द्वारा लगातार ' वनवुन'[2] गीत गाना इस कथा काव्य को न केवल महिमा मण्डित कर देता है अपितु शिव–शक्ति की प्रणय कथा को पारिवारिक सन्दर्भों के साथ जोड़ देता है।

'शिव परिणय' वर्णनात्मक कथा–काव्य का आरम्भ मंगलाचरण से होता है। गणाधिपति महागणेश की स्तुति के बाद कवि सद्–गुरु के सम्मुख नत–मस्तक हो कर विनीत भाव से प्रार्थना करता है कि :–

'ओन छुस ज़ॉन हिंज़ वथ वुछनावतम
सतग्वर् हावतम गटि मंज़ गाश ।
वोलनस समसारऽचि मायाये
मोकलय चानि वोपाये सूत्यि
दयायि हिंज़ऽई नज़रा त्रावतम
सतग्वर् हावतम गठि मंज़ गाश
मूलुॅ तलुॅ ओसुस न्यर्मल पोनी
व्यवहार प्रकृच़ कोरनम यख
न्यर्णय गरमी सूत्यि व्यग्लावतम
सतग्वर् हावतम गटि मंज़ गाश ।'[3]

शिव और शक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध की ओर संकेत करते हुए कवि लिखते हैं कि दानों एक दूसरे के पूरक हैं। वस्तुतः शक्ति के बिना शिव शव है। यदि शिव ज्ञान रूप है तो शक्ति क्रिया रूप है । शिव अपनी इच्छा को शक्ति के द्वारा ही सफल कर देते हैं।[4] कवि के कथनानुसार रात और दिन, पृथ्वी और आकाश अनार के दाने और अनार, अमृत कुंड और अमृत, लक्ष्मी और नारायण तथा सावित्री और

ब्रह्मा का जो सम्बन्ध परस्पर है वही पार्वती और शिव अर्थात् शक्ति और शिव का परस्पर एक दूसरे के साथ है :–

'चॅ छुख दोह तुॅ ब्व छस रात चॅ आकाश तुॅ ब्व – बुतरात
चॅ छुख दॉन ब्व छस दानुॅ ब्व छस पानुॅ दयालू।
चॅ छुख डय्‌क प्यठुक टिकुॅ ब्व छस बुथि प्यठुक तीज़
डय्‌कस टिक् छुई शूबानुॅ ब्व छस पानुॅ दयालू ।' [5]

उमा द्वारा अग्नि समाधि लेने के पश्चत् हिमालय के घर पार्वती का जन्म 'शिव परिणय' के कथानक का अग्रिम मोड़ है।[6] हिमालय के घर में बड़े लाड़ प्यार के साथ उसका भरणपोषण होता है। पूर्व जन्म की प्रत्येक घटना उसके मानसपटल पर अंकित है। वह अपने होने वाले भर्ता की तलाश में वन–वन भटकती है। हर गोशे और चमन में उसे शिव की तलाश है।। उसे लगता है कि प्रकृति का कण–कण शिवमय है। शिव का अद्‌भुत सौन्दर्य ही सर्वत्र व्याप्त है पर साकार रूप में उसे वरण करने की उत्कट इच्छा से प्रेरित पार्वती शिव का गुण गान करती हुई वस्तुतः प्राणप्रिय में लय होने के हेतु व्याकुल दिखाई देती है। उसे विश्वास है शिव ही इस सृष्टि का मूल कारण है और प्रकृति के कण–कण में उसी का रूप–लावण्य प्रतिबिम्बित है :–

चुॅई छुख ज़प यग्युक ज़प चुॅइ छुक तपवनुक तप
चुॅई छुख सादन हुन्दुइ साद क्यथो याद म्य प्योहम
चुॅइ छुख यूगयन हुन्दुई यूग चुॅइ प्राणन्यन हुन्दुई प्राण
चुॅई छुख सतकुई संवाद क्यथो याद म्यॅ प्योहम ।
चुॅइ छुख दोख चुॅई छुख सोख चुॅई छुख परमानन्द मोख
चुॅई छुख कम चुॅई छुख ज़्याद क्यथो याद म्यॅ प्योहम।[7]

बहुत भटकने के बाद और उसके प्रेम की कठिन परीक्षा लेने के पश्चात् आशुतोष गौरी पर प्रसन्न होते हैं और उसके साथ विवाह–सूत्र में बन्ध जाने का वचन देकर वापस कैलास पर्वत पर लौट आते

हैं और सप्त ऋषियों के साथ अरुंधती और नारद मुनीश्वर को हीमाल (हिमाल) के घर गौरी का हाथ माँगने के लिये भेज देते हैं। मीनावती और हीमाल (हिमाल) सहर्ष रिश्ते को स्वीकार करते हैं और तत्पश्चात् निश्चित तिथि पर विवाह हेतु शिवजी विचित्र रूप मुद्रा में सर्पमाल धारण किये हुए, वृषभ पर सवार, भस्मस्नात, सिंहचर्म धारण किये, मस्तानी चाल में हिमालय के घर बारात के साथ पहुँचते हैं। देखते ही मीनावती नारद मुनीश्वर के सम्मुख रोते हुए विलाप करती है । वह शिव की लीला को समझ नही पाती। क्रुद्ध होकर वह अपने आप को कोसती है और बेटी के निर्णय पर क्षोभ व्यक्त करती है। जोगी बाबा को बेटी के दूल्हा के रूप में देखकर वह तड़प उठती है और भीतर की पीड़ा को अश्रुओं से भिगो कर नारद मुनीश्वर के सम्मुख इस प्रकार व्यक्त करती है :–

'दप्योनस ब्ययि नारद जी यि क्या गोम
गोसोन्या हयोह यि क्युथ महाराज़ुॅ यिथ प्योम
यि कॅमुॅ योछ़नय यिथुइ महाराज़ुॅ यीनय
गोसोन्या राज़ुॅ कोमारे च़्यॅ नीनय
दिच़न अदुॅ बाख लजिस वदुॅनि लूकुॅ पामन
मलऽनि लॉज ख़ाक वाऽलिन चाख जामन
दमन मंज़ वुछ बनान क्या व्यवहारस
सपुॅन मातम सराया राज़दारस ।' [8]

पर्याप्त अनुनय विनय के पश्चात् शिव जी प्रसन्न हो कर अद्भुत सौन्दर्ययुक्त और तेजवान दूल्हा का रूप धारण कर लेते हैं और तत्पश्चात् गौरी का विवाह सम्पन्न हो जाता है। विवाह के अवसर पर वे समस्त धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक रीति रस्म पूरे किये जाते हैं जो कश्मीरी पण्डित परिवारों में ऐसे शुभावसरों पर सम्पन्न होते हैं। लग्न–मंडप पर पुष्पपूजा का कवि ने विशेष रूप से वर्णन किया है। नानारंगी पुष्प अर्पित करते हुए दूल्हा–दुलहिन की बड़ी श्रद्धा के साथ

पूजा की जाती है और परिवार के सभी निकटस्थ सम्बन्धी इस पूजा में सम्मिलित होकर भविष्य की मंगल कामना करते हुए नव–दम्पति को सुखद पारिवारिक जीवन जीने के हेतु आशीर्वाद देते हैं। मंत्रोच्चारण के साथ लग्न का यह विशिष्ट अनुष्ठान सम्पन्न होता है । शिव और शक्ति की पुष्प–पूजा हो रही है – यह दृश्य निस्सन्देह स्वर्गिक है और कवि इसका एक फोटा चित्र शब्दों के माध्यम से अत्यन्त कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करते हैं:–

'अनिख वॉनि दिथ चोपाऽरी पोश साऽरी
करऽनि लाऽग पोशि पूज़ा चॉरि चॉरी
करिथ प्रथ रंगुँ रंगै पोशनुई ढेर
कोरख शिव शक्ति रूपस ऑन्दि ऑन्दि गेर
परान ओस वीद मंगल श्रुकि ब्रह्मा
उमा छय सूत्य सूत्यी कर चॅ क्षमा
तिमन बास्योव न्यबर अन्दर शिवुई शिव
च़लिख नीरिथ शिव सऽन्द लोलुँ आलव ।'[9]

स्त्रियों की ओर से यह शिकायत करने पर कि पिया के घर से गौरी के गहने नहीं आये हैं शंकर की इच्छा से स्वर्ण हिमपात होता है और सारा वातावरण हर्षोल्लास में निमग्न शिव के जयजयकार से गूँज उठता है। इसके पश्चात् शिवरात्रि के महात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। इसे शिव और पार्वती के प्रथम मिलन की रात्रि मानकर कवि मुक्त कंठ से मधुर मिलन के महिमा गान में लीन हो जाता है। अब शिव जी पार्वती के साथ कैलास पर्वत की ओर प्रस्थान करते के हेतु तैयारी कर रहे हैं और विदाई के समय मीनावती के साथ–साथ अन्य उपस्थित सगे–सम्बन्धी पुनः शिव वन्दना करते हुए गद–गद हो उठते हैं। इसी प्रकार शिव जी के रुख़स्त होने पर भी हीमाल के समस्त शुभ चिन्तक एकत्र होकर मुदित मन से शिवनाथ की स्तुति वन्दना करते हैं और इस शुभ विवाह अनुष्ठान के सम्पन्न होने पर एक दूसरे को बधाई

देते हैं। कवि तत्पश्चात् 'ओ३म्' शब्द की दार्शनिक व्याख्या लीलाओं के द्वारा करते हैं और संसार के मिथ्या/नश्वर/असार होने का एहसास उसे संसार–प्रवाह में मग्न लोभी जनों को सावधान करने के लिये प्रेरित करता है।

अन्त में कवि ने गौरी के प्रति अस्तुति गान को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया है :–

'हिमालय परबत् नि गरि च़ऽई ज़ायख
आयख करने ज़गि रखिपाल।
परमॅु शख्ती परमशिव छ़ांडनि द्रायख
कर्म सूत्यि सपज़ऽख शिव शक्ति रीऽप
भगवतमाया बोज़ने आयख
आयख करने ज़गि रखिपाल।
ज़गतऽच दाता छ्ख फलदायक
यस दिख च़ऽई तस दियि शिव जी
सुई च्ये लायक् च़ऽई तस दायख
आयख करने ज़गि रखिपाल। ' [10]

स्पष्ट है कि 'शिवपरिणय' में शिवपार्वती के विवाह की कथा मुख्य रूप से वर्णित है और इसके लिये कवि ने कथा–वाचक के समान वर्णनात्मक शैली को अपनाया है। लेकिन रचना का सम्पूर्ण सौन्दर्य केवल कथा–वर्णन में ही नहीं है अपितु कई अन्य तत्त्वों के समुचित संयोग से 'शिव–परिणय' एक विशिष्ट रचना बन पड़ी है। विवाह–कथा के साथ–साथ इस रचना के कुछ अन्य विचारणीय प्रमुख आकर्षण इस प्रकार हैं :–

1. 'शिव–परिणय' में वर्णनात्मक कथा–शैली और गीति–शैली का समुचित संयोग देखने को मिलता है। कथा की मुख्य धारा में असंख्य शिवलीलाएँ भी प्रवाहित हैं। इतनी ही नहीं, कृष्ण लीलाएँ और देवी देवताओं के स्तुतिगान एवं भजन भी हमें इस

में देखने को मिलते हैं। वही समन्वयात्मक दृष्टिकोण इस रचना में भी अपनाया गया है और विष्णु के अवतार रूप की वन्दना मुक्त कंठ से की गई है। कृष्ण राज़दान सगुण भक्त थे अथवा निर्गुण – यह कहना तनिक मुश्किल है, लेकिन इस में सन्देह नहीं कि वे शिव के अनन्य उपासक थे और स्तुति गायन में सिद्धहस्त । भक्ति के किसी सम्प्रदाय अथवा वर्ग के साथ उन्हें जोड़ा नहीं जा सकता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि राज़दान साहब पहले कवि थे फिर भक्त, अतः प्रत्येक रचना में, चाहे वह शिव से सम्बन्धित है या राम से अथवा कृष्ण से, एक सच्चे कवि का कवि–हृदय प्रतिबिम्बित दिखाई देता है। यहाँ शिव–स्तुति में कृष्ण लीला का माधुर्य घुलमिल गया है। राम भक्ति में अन्य देवी देवता भी भागीदार बन गये हैं। यह तो अजब संगम है जो एक सच्चे भक्त को जहाँ आनन्द विभोर कर देता है वहाँ कभी–कभी शंका में भी डाल देता है।

2. सम्पूर्ण कथा लोक मानस से जुड़ी है। एक विशिष्ट परिवेश (environment) को ध्यान में रख कर राज़दान साहब शिव–पार्वती की विवाह कथा सुनाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शुभ–विवाह कश्मीर में किसी प्रतिष्ठित पण्डित परिवार में हो रहा है। अतः विशिष्ट लोक–जीवन और समाज से सम्बन्धित प्रत्येक रीति रिवाज का पालन बड़े चाव के साथ हो रहा है। 'शिव परिणय' में निस्सन्देह कश्मीरी पण्डितों का पारिवारिक जीवन समस्त विश्वासों, परम्पराओं, रीति रिवाजों और मान्यताओं के साथ प्रतिबिम्बित हो उठा है।

3. शवै दर्शन तथा अद्वैतवादी विचारधारा का प्रभाव सम्पूर्ण रचना में सामूहिक रूप से देखने को मिलता है। यहाँ शिव (त्रिक सिद्धान्त के आधार पर) तीनों रूपों में (शिव रूप, शक्ति रूप तथा नर रूप) लीला करते हुए मंत्र मुग्ध कर देते हैं। कहने

का अभिप्राय यह है कि 'शिव परिणय' शिव भक्त कृष्ण–राज़दान के निजी विश्वासों के अनुरूप सर्वशक्तिमान ब्रह्म की व्यक्त लीला है। वही शिव जो जगत का मूल कारण है, सौन्दर्य का सार तथा आनन्द का स्रोत है तथा शैवमतानुयायी भक्त जनों की भक्ति का ठोस आधार है, इस लीला जगत में व्यक्त होकर शक्ति के संग प्रकृति के कण–कण में अपने सौन्दर्य का विस्तार पाता है। 'शिव परिणय' में शिव–भक्त अपने विश्वासों के अनुरूप ही अपने इष्ट के प्रति समर्पित रहता है। न केवल भक्त जन अपितु असंख्य देवी देवता 'शिव–स्तुति' में लीन दिखाई देते हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं – विष्णु, ब्रह्मा, धर्मराज यमराज, सुरपति, सप्तऋषि, वरुणदेव, चित्रगुप्त, सूर्यदेव, लक्ष्मी, सरस्वती, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर तथा नारद मुनीश्वर।

4. शिव परिणय की कई लीलाओं और स्तुति परक गीतों में विशिष्ट दार्शनिक पृष्ठभूमि पर गहन विचारों की अभिव्यक्ति अत्यन्त कलात्मकता के साथ हुई है। अद्वैतवादी विचारधारा से प्रभावित कवि अन्तिम क्षणों में जगत–मिथ्या के बोध से पीड़ित होकर जीव को सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिये तथा पंचइन्द्रियों को अपने वश में करने के हेतु सावधान करते हैं। अपने आपको पहचान कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधना–रत रहना जीव के लिये परमावश्यक है। मानस के तमसान्धकार को तो ज्ञान ज्योति से ही प्रज्वलित किया जाता है। विवेक बुद्धि का अपना महत्त्व है अवश्य, क्योंकि हंस बुद्धि से ही कांच और कंचन की पहचान सम्भव है।

5. कई पौराणिक कथा सन्दर्भों के आधार पर कृष्ण जू ने 'शिव परिणय' की कथा को सम्यक् विस्तार प्रदान किया है। इन पौराणिक सन्दर्भों अथवा मिथकीय पात्रों के द्वारा कवि लोक मिज़ाज के अनुकूल शिव–पार्वती की कथा को एक नवीन

आकार प्रदान करने में सफल हुए हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जीवन के किसी भी मोड़ पर अपनी परम्परा से अलग होना अत्यन्त घातक सिद्ध होता है। यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि परम्परा और अन्धविश्वास एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न और अलग हैं। जहाँ हम अपनी परम्परा से अलग हो जाते हैं वहीं हम अपनी पहचान खो देते हैं। पौराणिक कथाएँ, सन्दर्भ और पात्र आज भी हमें अपने अतीत के साथ जुड़ने और वर्तमान के साथ जूझने में आत्मिक शक्ति प्रदान करते हैं। प्रस्तुत रचना में उमा के नामकरण से सम्बन्धित कथा, प्रहलाद की कथा, विष्णु की शिव भक्ति, यमराज धर्मराज की शिवस्तुति, हर्षेश्वर की कथा तथा भस्मासुर की कथा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इतना ही नहीं सम्पूर्ण कथा में नारद मुनीश्वर की भूमिका भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

6. कश्मीर के महान शैवमताचार्य, दार्शनिक, आलोचक तथा काव्यशास्त्र के आचार्य अभिनवगुप्त के प्रकांड पाण्डित्य से प्रभावित होकर राज़दान साहब ने एक स्तुतिगीत (साऽरी ह्यथ निम सर्व वौपकॉरी अभिनवगुप्त आचॉरी ज़न) लिखा है और इस प्रकार 'तंत्रालोक' तथा 'अभिनवभारती' के रचयिता की असाधारण प्रतिभा के प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किये हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि केवल पौराणिक सन्दर्भ ही नहीं अपितु शुद्ध ऐतिहासिक सन्दर्भ एवं पात्र भी 'शिव परिणय' के कथा–विस्तार में सहायक सिद्ध हुए हैं।

7. राज़दान साहब ने 'शिव–परिणय' की कुछ लीलाएँ खड़ी बोली में लिखी हैं और कुछ लीलाएँ खिचड़ी भाषा में । खड़ी बोली और कश्मीरी का मिश्रित रूप इन लीलाओं को अभिव्यक्ति कला की दृष्टि से आकर्षक बना देता है। प्रयोगात्मक स्तर पर इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है।

8. सहजता और सरलता कृष्ण राज़दान की भाषा का मुख्याकर्षण

है। उन्हें न पाण्डित्य प्रदर्शन का मोह था और न अलंकृत भाषा के प्रति आग्रह । अभिव्यक्ति को सशक्त एवं ग्राह्य बनाने के हेतु कवि ने लोक में व्यवहृत मुहावरों, कहावतों तथा शब्द–प्रयोगों के साथ–साथ नाना प्रकृति–दृश्यों का भी चित्रांकन किया है। लोक भाषा के साथ–साथ लोक–संगीत के प्रति भी उन्हें विशेष रुचि थी। कश्मीर में प्रचलित लोकगीतों की विविध शैलियों से वे भली भाँति परिचित थे। इन में विशेष रूप से 'वनवुन' के गीत 'शिव परिणय' में शिव–पार्वती विवाह के अवसर पर गाये गये हैं। राज़दान साहब अपने लोक जीवन के प्रति सचेत थे। लोक जीवन की पृष्ठभूमि पर ही तो 'शिव परिणय' का प्रणयन हुआ है। इनकी अनेक लीलायें लोक–साहित्य का अभिन्न अंग बन गई हैं और कश्मीरी पण्डितों के विवाह गीतों में सम्मिलित हुई है।[11] विवाहोत्सव पर विशेष 'वनवुन' गीत अतिथियों का मन इस प्रकार मोह लेता हैं :–

'पॉरि पॉरि लगितोस रथुँ सवारे
माहराज़ुँ राज़ुँ कोमारे आव।
सॉनिस पोशि बागस ओस गोशा
गोशस प्यठ पम्पोशा ब्यूठ
रोशिच़ाव पोशिनूल मंज़ पोशिवारे
माहराज़ुँ राज़ुँ कोमारे आव ।

द्वारस साऽनिस बन्याव स्वर्गदारा
कॉनी सॉन्य शालमारा हिश
सालरव कमि हालुँ छ़ालुँ तति मारे
माहराज़ुँ राज़ुँ कोमारे आव ।

वनचे विगने वनवुनि द्राये

आकाश प्रठ वछॅ अछॅ रछॅ बॉन
गॉन छस वनवान कन दारे
माहराज़ुॅ राज़ुॅ कोमारे आव।'[12]

तुम्बकनारी[13] का कश्मीरी लोक–संगीत में विशाष महत्त्व रहा है। आज भी विवाह के शुभावसर पर कई दिनों तक स्त्रियाँ घरों में तुम्बकनारी बजा बजा कर गीत गाती हैं। कश्मीर के लोक संगीतज्ञों ने इसे घड़े[14] का पूरक मान कर पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। राज़दान साहब ने 'शिवपरिणय' में तुम्बकनारी के गीत भी गाये हैं। लोक रंग पण्डित कृष्ण राज़दान की लेखनी का मुख्याकर्षण रहा है। यहाँ लोक ही काव्य का पर्याय बन गया है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि कश्मीरी भक्ति साहित्य के इतिहास में 'शिव परिणय' निस्सन्देह एक अनमोल कलात्मक उपलब्धि है। प्रत्येक कश्मीरी भाषा–भाषी को इस सांस्कृतिक विरासत पर गर्व होना चाहिए। शिव भक्त पण्डित कृष्ण राज़दान ने शिव–शक्ति की प्रणय कथा को कश्मीर के लोक मानस के साथ जोड़ कर आनन्दोल्लास के उत्स के रूप में प्रवाहित किया है।

भले ही फ़ारसी के अन्ध भक्त आलोचक उनका मूल्य आँकने में अपनी असन्तुलित दृष्टि का परिचय दें लेकिन कश्मरी भाषा और साहित्य का मर्मज्ञ कृष्ण राज़दान की सर्जनात्मक प्रतिभा की उपेक्षा नहीं कर सकता। आख़िर कंचन को कहाँ तक कांच समझ कर ठुकराया जायेगा ?

31.05.2003 ई०

संदर्भ–संकेत

1. 'मननमाल' – कश्मीरी पण्डितों में विवाह के अवसर पर लग्न–मंडप पर दूल्हा के शीर्ष–पट पर एक विशेष माला बान्धी जाती हैं जिसे 'मनन माल' कहते हैं। – लेखक
2. कश्मीरी विवाह गीत को 'वनवुन' कहते हैं।
3. 'कुलयाति कृष्ण जू राज़दान' – सम्पादक : सोमनाथ वीर, जम्मू एण्ड कश्मीर एकेडमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, श्रीनगर द्वारा सन् 1984 ई0 में प्रकाशित – पृ० 94–95
4. 'योजना' – संस्कृति विशेषांक – सन् 1960 ई०; "कश्मीर का शैव दर्शन" – डॉ० बी०डी० शास्त्री–पृ० 88.
5. 'कुलयाति कृष्ण जू राज़दान' पृ० 155
6. 'शिव परिणय' में पार्वती के पिता का नाम हीमाल/हिमाल तथा माता का नाम मीना कहा गया है। वास्तव में ये नाम क्रमशः हिमालय / हिमवान् और मैना / मेनिका के तद्भव रूप हैं। पार्वती का मायके का नाम गौरी था। – लेखक
7. 'कुलयाति कृष्ण जू राज़दान' पृ० 151–152
8. ' वही – पृ० 187
9. ' वही – पृ० 239
10. ' वही – पृ० 352
11. 'शीराज़ा' (1976 ई०) 'शिव परिणय' – मोतीलाल साक़ी – पृ० 40
12. 'कुलयाति कृष्ण जू राज़दान' – पृ० 201
13. एक प्रसिद्ध कश्मीरी लोक–वाद्य।
14. मिट्टी का कलसा जिसे लोक–वाद्य के रूप में तुम्बकनारी के साथ बजाया जाता है।

कश्मीरी पण्डितों के संस्कार

(लेखक – मोहनलाल 'आश')

पुस्तक समीक्षा

'संस्कार' का शाब्दिक अर्थ है – पवित्रीकरण (purification), पापादि का प्रक्षालन करने वाला कृत्य, द्विजातियों (twice born,a Brahmin) के शास्त्र विहित कृत्य जो मनु के अनुसार बारह हैं और कश्मीरी पण्डितों के विश्वासानुसार चौबीस या सोलह । इसलिये शुद्ध करने वाला कोई भी कृत्य, अथवा मांझ कर चमका देने वाला कोई कर्म संस्कार कहलायेगा। इस शब्द की अन्तरात्मा में मानव शुद्धि, सुधार, पाप प्रक्षालन, उत्थान एवं आत्मज्ञान प्राप्ति का अर्थ निहित है। लौकिक भाषा का जब पाणिनि ने संस्कार किया तो संस्कृत कहलाई।

'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' शीर्षक से श्री मोहनलाल आश की एक महत्त्वपूर्ण रचना का प्रकाशन सन् 2002 ई० में हुआ। विजयेश्वर कश्मीर के मूल निवासी श्री मोहनलाल आश घाटी के जाने माने कश्मीरी कवि और गद्य लेखक हैं। 'अछर वनुॅक आलव' तथा 'अलमास' इनके चर्चित कविता संग्रह हैं।* 'तनकीद–त–तख़लीक' तथा 'तहकीक' इनकी उल्लेखनीय आलोचनात्मक गद्य रचनाएँ हैं। काश्मीर दर्शन', 'कश्मीर में शक्ति पूजा' 'कश्मीर की क़दीम राजधानी बिजबिहारा' 'नागमत–तुॅ–कशीर' दर्शन और इतिहास से सम्बन्धित ध्यानाकर्षित कराने वाली पूर्व प्रकाशित गद्य रचनाएँ हैं। जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित 'कुलयाति अब्दुल अहद नाज़िम' इनकी सम्पादकीय क्षमताओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं और प्रस्तुत

* 'आश' जी का नवीनतम काव्य–संग्रह 'बुतरात ॲछन मंज़' वर्ष 2005 ई० में प्रकाशित हुआ ।

रचना 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास के क्षेत्र में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जगद्गुरु भगवान गोपीनाथजी के भव्य चित्र से सुसज्जित 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' पुस्तक जे० के० आफसेट प्रेस दिल्ली से छप कर तैयार हुई है। कुल पृष्ठ संख्या 164 है। मुख–सज्जा श्री प्यारे लाल स्वदेशी ने की है। लेखक ने स्वयं इसके प्रकाशन की व्यवस्था जम्मू से की है और पुस्तक का मूल्य है – 140 रुपये । श्री एस० एल० राज़दान ने पूरी लगन के साथ इस की प्रेस कॉपी तैयार की है।

मैं आरम्भ में ही इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि बहुत समय के बाद हिन्दू लोकाचार (Hindu Ethos) पर आधारित तर्कसम्मत और ज्ञानवर्द्धक रचना का प्रकाशन एक कश्मीरी लेखक के द्वारा हुआ । भले ही धर्म गुरुओं ने इस क्षेत्र में कई प्रयास किये हैं, मेरा संकेत स्वर्गीय प्रेमनाथ शास्त्रीजी की ओर है लेकिन पहली बार एक क्षेत्र विशेष अर्थात् कश्मीर घाटी की हिन्दू संस्कृति के महत्त्वपूर्ण मुद्दे व्यवस्थित रूप में तार्किक दृष्टि से चर्चा के विषय बन गये हैं। कवि और गद्य लेखक आश अपनी सांस्कृतिक सम्पदा पर मुदित हुए और इन धूल भरे मौक्तिक कणों को पुनः पोंछने की आवश्यकता महसूस करने लगे। कविता के शीशमहल से बाहर निकल कर तहक़ीक और सम्पादन के गलियारों को पीछे छोड़ कर 'आश' कश्मीरी पण्डित के जीवन से जुड़े आधारभूत सांस्कृतिक स्रोतों को तलाशने लगे। तलाश बहुत समय तक जारी रही। समस्या थी बुनियादी तथ्यों को खोज कर तर्क सम्मत विश्वसनीय व्याख्या के साथ सामान्य पाठक अथवा अपने ही जाति बन्धुओं के सम्मुख उपस्थित करना।

घाटी के नामवर शैवशास्त्री और वयोवृद्ध अनुसंधित्सु प्रोफ़ेसर डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित ने 'प्रस्तावना' लिखकर पुस्तक को महिमा मण्डित किया है। एक और विशेष बात की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ । संस्कार (mental refinement), रीति या

रीत (custom), परम्परा (tradition) तथा रूढ़ि (Convention) शब्द समानार्थी नहीं हैं। संस्कार पवित्रीकरण का, रीति या रीति–रिवाज चलन अथवा परिपवाटी का, परम्परा–अविच्छिन्न चलते आये हुए अटूट सिलसिले का अथवा प्रथा का, रूढ़ि (stereotyped convention) रूढ़ हो चुकी परम्परा का द्योतक है। संस्कारों पर चर्चा करते समय हमें इनके धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सन्दर्भों को भी तलाशना होगा।

'आश' जी ने कश्मीरी पण्डितों के संस्कारों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय इन तीनों पहलू–धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक का विशेष ध्यान रखा है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि 'अतीत ही भविष्य की रूपरेखा निर्धारित करता है।'[1] 'आश' जी ने संस्कारों के वैज्ञानिक पहलू (scientific aspect) पर भी प्रकाश डाला है जो इस प्रकार के अध्ययन के लिये एक नवीन उपलब्धि है। मैं आश जी से सहमत हूँ कि संस्कारों और परम्पराओं के गर्भ में गूढ़ गहन चिन्तन निहित है। पर्यावरण प्रदूषण और पर्यावरण सुरक्षा के विषय को लेकर लेखक ने विश्वसनीय प्रमाण देते हुए पूर्वजों के चिन्तन की प्रशंसा की है। यह स्वीकारा है कि हमारे पूर्वज अपने आसपास के माहौल के प्रति सचेत भी थे और समर्पित भी। प्रकृति के प्रति वे संहारक की भूमिका नहीं बल्कि संरक्षक की भूमिका निबाहते थे। धार्मिक निषेधाज्ञा भी कभी मनोहारी होती है।

पुस्तक के अन्तर्गत लेखक ने कश्मीरी पण्डितों की सांस्कृतिक सम्पदा पर क्रमबद्ध रूप से विचार किया है। यह बात सर्व विदित है कि हिन्दू धर्म शास्त्रों में 'गर्भाधान' से लेकर 'अन्तिम संस्कार' तक कहीं 16 तो कहीं 24 संस्कारों का निरूपण किया गया है।

संस्कारित होना एक प्रगतिशील समाज के लिये नितान्तावश्यक है। कश्मीरी पण्डितों की संस्कृति का मूल मन्त्र है – 'जियो और जीने दो' (Live and let Live)। देखा जाये तो हमारी संस्कृति तो विराट

आर्य संस्कृति का ही एक विशिष्ट उन्नत और ख्यातिप्रद अंग है। हज़ारों वर्षों से एक सारस्वत ब्राह्मण समुदाय (आर्यद्विज) एक विशिष्ट पर्वतीय भूखण्ड में रहता चला आया है जहाँ नाग, यक्ष तथा अन्य पर्वतीय जातियाँ पहले से ही रहती चली आ रहीं थीं। मुख्य धारा से हट कर अलग हो जाने के कारण विशिष्ट भौगोलिक और प्राकृतिक सीमाओं के भीतर विकसित होने के कारण, महान तपस्वी ऋषि–मुनियों और बुद्धिजीवियों के चिन्तन के परिणामस्वरूप समय–समय पर विकास के पथ पर नवीन तत्त्वों और गुणों का सम्मिश्रण वस्तुतः विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया का परिणाम है। यही कारण है कि कश्मीर मंडल में विकसित आर्य संस्कृति 'कश्मीरी पण्डित संस्कृति' के नाम से चर्चित रही । देखा जाये तो संस्कृति का वाहक तत्त्व संस्कार है। 'आश' जी इस तथ्य की ओर आरम्भ में ही संकेत करते हैं।

यह कहना बिल्कुल उचित है कि हमारी संस्कृति जड़वादी (materialistic) संस्कृति नहीं है। हम जीना चाहते हैं सब को अपने साथ लेकर उन्मुक्त प्रकृति की गोद में, ईश कृपा का कवच पहन कर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करते हुए पूरे आत्म विश्वास के साथ। आश जी के कथनानुसार सहअस्तित्व (co-existence) का सिद्धान्त हमारी संस्कृति का बुनियादी उसूल (principle) है।

पुस्तक के आरम्भ में संस्कृति और संस्कार की सम्यक् व्याख्या करने के बाद लेखक 16 संस्कारों में से कुछ प्रमुख संस्कारों पर अपने विचार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ व्यक्त करते हैं जिनमें जातकर्म संस्कार (पुत्र जन्म के अवसर पर किया जाने वाला संस्कार), नामकर्ण संस्कार (काहनेथर), मुंडन संस्कार (चूड़ाकर्म), यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार एवं अन्तिम संस्कार उल्लेखनीय हैं। साथ–साथ लेखक अपने धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्सवों पर व्यवहार में लाई जाने वाली विशिष्ट रीतियों की तार्किक व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं।

आरम्भ में ही तिलक, शिखा और नारी (नाड़ी) * बन्ध (जिसे लेखक ने नारीवन अर्थात् मौलि कहा है), 'सन्निवारी' तथा 'हारमंडुल' आदि की सार्थकता पर विचार व्यक्त किये गये हैं।

मैं इनमें से केवल एक की सविस्तार चर्चा करना चाहूँगा – गोर–त्रय अर्थात् गौरी तृतीया या गुरुतृतीया का पर्व कश्मीर में हर वर्ष माघ शुक्ल पक्ष तृतीया को मनाया जाता है। यह बात सही है कि इस दिन कश्मीर के एक महान तपस्वी और सिद्ध पुरुष पीरपण्डित पादशाह को अपने गुरु स्वामी कृष्णकार ने गुरु दीक्षा दी थी। यह भी मान्य है कि इस दिन जगद्‌अम्बा – उमा, लक्ष्मी व सरस्वती तीनों रूपों में उस घर में वास करती है जिस घर में इस दिन गुरु पूजा के साथ विद्यारम्भ का शुभ मुहूर्त सम्पन्न हो। स्पष्ट है कि इस पर्व का सम्बन्ध विद्याम्भ और गुरु पूजा से है । मैं यहाँ एक विशेष बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ ।

वस्तुतः यह पर्व शारदा में स्थित 'शारदा शिक्षा केन्द्र' से जुड़ा है। यह बात सर्वविदित है कि हिन्दू राज्यकाल में शारदा (तहसील अट्ठमुकाम – ज़िला मुज़फ्फ़राबाद, हिन्दुस्तानी राजनेताओं की हिमालयाई भूल के कारण आज पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर का क्षेत्र) इतिहास , दर्शन, धर्म, भाषा, व्याकरण, शैव शास्त्र एवं शारदा लिपि अध्ययन का प्रमुख केन्द्र था। जम्मू कश्मीर राज्य का हज़ारों वर्ष पुराना प्रथम विश्वविद्यालय जहाँ प्रतिवर्ष कई राज्यों से विद्या प्राप्ति हेतु इच्छुक छात्र जिनमें बंगाल के गौड ब्राहमण एवं काशी के सारस्वत ब्राह्मण उल्लेखनीय हैं, एक वर्ष के लिये आते थे और गुरुजनों से शिक्षा ग्रहण करते थे। नया सत्र माघ शुक्ल पक्ष तृतीया के दिन आरम्भ होता था और इसी दिन वे छात्र जिन्होंने एक वर्ष का पाठ्यक्रम पूर्ण किया होता, अपनी योग्यता एवं जानकारी का प्रामण देते थे। आमंत्रित विद्वानों के सम्मुख

---

* नारी – स्त्री, नाड़ी (शरीर की रक्त वाहिनी शिराएँ;
बन्ध – बान्धना, बन्धन, बान्धने का साधन

उन्हें मौखिक परीक्षा में बैठना होता और विषय से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देकर शंकाओं का समाधान करते हुए वे या तो उत्तीर्ण होते थे अथवा विफल। शास्त्रार्थ होता था और तब जाकर उन्हें विशारद * की परीक्षा में पास होने का प्रमाण पत्र दिया जाता था । गोया हर वर्ष यहाँ दीक्षान्त समारोह (Convocation) के रूप में प्रमाण–पत्र वितरण समारोह मनाया जाता था। 'नवरात्र' की प्रथम तिथि अर्थात् 'नवरेह' के शुभ दिन यहाँ नये सत्र के लिये शिक्षण कार्य आरम्भ होता था।

एक तरह से इस दिन छात्रों के साथ गुरुजनों की योग्यता का परीक्षण भी होता था। समारोह में छात्र अपने गुरुजनों के चरणों पर पुष्पार्पण करके आशीर्वाद पाते थे और माता सरस्वती की मुक्त कंठ से वन्दना होती थी। शारदापीठ के परिवार जनों का आज भी इस बात में दृढ़ विश्वास है कि :–

दयाहीनं धर्म त्यजेत्, विद्याहीनं शिशु त्यजेत्
त्यजेत्क्रोधमुखी भार्या, निस्नेहान् बांधवान त्यजेत् ।

गौरी तृतीया / गोर त्रय / गुरु तृतीया वस्तुतः विद्यारम्भ का पर्व है जो मानसिक एवं बौद्धिक विकास की प्रक्रिया के साथ जुड़ा है।

अज्ञान वश आज यह मात्र औपचरिकता तक सीमित रह गया है । कुलगुरु इस दिन घर में माता सरस्वती का सचित्र स्मृति पत्र लाते हैं और यत्किंचित दक्षणा पाकर सन्तुष्ट होते हैं। कितना दुर्भाग्य है हमारा कि हम इस महापर्व की सांस्कृतिक महता एवं ऐतिहासिक प्रासंगिकता से दूर चले जा रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि आश जी मेरे इस स्पष्टीकरण (explanation) पर विचार करेंगे।

संस्कारों को मनुष्य उस परिवेश से ग्रहण करता है जिसमें उसका शरीरिक और मानसिक विकास होता है। वस्तुतः

* विशारद – विद्वान, कुशल, चतुर (learned) ; एक उपाधि

संस्कार सांस्कृतिक उन्नति के परिचायक हैं, आत्म बोध की पहचान है। 16 संस्कारों का संक्षिप्त परिचय देते हुए गर्भाधान संस्कार पर लेखक ने विस्तार से प्रकाश डाला है। इस संस्कार के साथ परम्परा से चले आये धार्मिक विश्वासों और सामाजिक मान्यताओं का गहन सम्बन्ध रहता है। इसके पश्चात् आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उत्थान के हेतु पंसुवन संस्कार, आध्यात्मिक दृष्टि से उत्तम और वैज्ञानिक दृष्टि से लाभदायक मुंडन संस्कार (चूडाकर्म),

अश्मा भवः (पत्थर की भाँति दृढ़ बनो)
परशु भवः (कुल्हाडी की भाँति शत्रुनाशक बनो);
हिरण्यभ् भवः (सोने के समान तेजस्वी बनो);
जीवेत् शरद् शतम् (तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो)

कुलगुरु द्वारा यह आशीर्वाद प्रदान करने का 'काहनेथर' अथवा नामकरण संस्कार तथा गायत्री [2] की मन्त्रपूत शक्ति यज्ञोपवीत ग्रहण करने का संस्कार जो द्विज बालक को पुनर्जन्म प्रदान करता है। आश जी के अनुसार यज्ञोपवीत कश्मीरी पण्डितों की दृढ़ आस्था और सनातनी विश्वासों की पहचान है। मेरा विचार है कि गले में यज्ञोपवीत डाल कर वस्तुतः हम बालक को अपने निजी अस्तित्व, सामाजिक कर्तव्य एवं मनुष्य धर्म के प्रति सचेत करते हैं। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण चुकाने की प्रतिज्ञा के साक्षात् प्रमाण हैं। गायत्री मन्त्र उसके जीवन का आधार बन जाता है और गले में यज्ञोपवीत कर्तव्य कर्म अर्थात् धर्म निबाहने (पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण चुकाने) की स्मृति दिलाता है।

'आश' जी का यह कथन सही है कि यज्ञोपवीत धारण करने से मनुष्य द्विज (ब्राह्मण) बनता है अर्थात् दूसरा जन्म धारण करता है जिसकी ओर मैं पहले ही संकेत कर चुका हूँ। बड़ी सावधानी के साथ आश जी ने अपने आपको विवादों से बचाते हुए यज्ञोपवीत के धार्मिक परिप्रेक्ष्य को उजागर करके बात समाप्त कर दी है। लेखक ने इस

धार्मिक – सांस्कृतिक – सामाजिक उत्सव की वर्तमान स्थिति पर विचार नहीं किया है। मैं आश जी के क़लम को चूम लेता यदि निर्भीक होकर वे लिखते कि आजकल कभी कभी हम विवाह से एक दिन पहले मात्र औपचारिकता को निबाहते हुए यज्ञोपवीत संस्कार की रीत पूरी करते हैं और दूल्हा राजा को ससुराल से सोने की चेन गले में पहनने के लिये उपहार स्वरूप भेजी जाती है अथवा पहनाई जाती है और अगर लड़की वाले ने यह रस्म पूरी न की तो फ़कीर और पिछड़े (backward) कहलाते हैं।

वस्तुतः यज्ञोपवीत धारण करके हम जीवन के संघर्ष क्षेत्र में पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रवेश करते हैं। धार्मिक दृष्टि से वह पण्डित बन जाता है – कर्मकांड करने का अधिकारी, सांस्कृतिक दृष्टि से वह अपने वंश और वंश मर्यादा के साथ जुड़ जाता है और सामाजिक दृष्टि से वह जीवन व्यवहार निबाहने का अधिकारी हो जाता है। एक महत्त्वपूर्ण विषय की ओर संकेत करते हुए आश जी ने लिखा है कि यज्ञोपवीत लड़के और लड़की दोनों का होना कोई पाप नहीं अपितु शुभ फलदायक है। मैं इस सन्दर्भ में अपनी जानकारी आप के सम्मुख रखना चाहता हूँ।

दो मास पूर्व मैं पण्डित ओमकारनाथ शास्त्री सुपुत्र स्वर्गीय ज्योतिषी प्रेमनाथ शास्त्री से उनके निवास गोलगुजराल जम्मू में मिला। उन्होंने मुझे बताया कि शास्त्रानुसार लड़की भी यज्ञोपवीत धारण कर सकती है और उसे भी यज्ञोपवीत गायत्री मन्त्री के साथ पहनाया जा सकता है और उन्होंने शास्त्रानुसार ऐसा पुनीत कर्म कुछ समय पूर्व एक पण्डित परिवार में किया है।

आश जी श्रीचक्र को माता शारिका के शक्ति प्रतीक के रूप में आत्मिक शान्ति एवं मानसिक सुख शान्ति का मंत्रपूत यंत्र मानते हैं जिसे कश्मीरी पण्डित महिलाएँ अपनी 'टेक पूच़' [3] पर अंकित कराके शीर्ष पर धारण करती हैं। श्रीचक्र ईशकृपा एवं देवताओं के आशीर्वाद

और अनुग्रह का कारण बनकर शुभ फलदायक माना जाता है। श्री और सम्पदा का यह मूल यंत्र वस्तुतः तंत्र साधना से जुड़ा कष्ट निवारक और शुभफलदायक ईशानुग्रह का प्रतीक माना जाता है।

यज्ञोपवीत पर गुरु महाराज के लिये सम्भवतः गुरु दक्षणा चुकाने के हेतु 'अभीद'[4] (सं० अभेद) के रूप में भिक्षा मांगना यज्ञोपवीत संस्कार का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य कर्म है। आश जी का मानना है कि विनम्रता का पाठ पढ़ाने के लिए अभीद की व्यवस्था है। इसे ब्रह्मचारी का अहंकार समाप्त हो जाता है और वह ज्ञान प्राप्ति के पथ पर उत्कर्षोन्मुखी हो जाता है । यह बात तो अपनी जगह ठीक है लेकिन अनुतरित प्रश्न यह है कि आज के व्यापारिक युग में कहीं यह मात्र औपचारिकता तो नहीं। औपचारिकता निबाहना और श्रद्धा–प्रेरित एक स्वस्थ परम्परा का अनुसरण करना वस्तुतः दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। गुरु आशीर्वाद पाने के हेतु यजमान की व्यवहार बुद्धि में भी तदनुकूल परिवर्तन अपेक्षित है क्योंकि ताली दो हाथ से बजती है। आज के व्यापारिक युग में वीडियो कैमरा और माइक्रोफोन (ध्वनि ग्राहक) सब से पहले तलाशे जाते हैं और तत्पश्चात् यज्ञशाला में मन्त्राह्वान होता है। बदले हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। संध्या उपासना पर भी आश जी ने विस्तार से प्रकाश डाला है और इसे वैदिक धर्म का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य स्वीकारा है। प्रातः कालीन संध्या सूर्योदय के पूर्व जब आकाश में तारे भरे हों, को उत्तम सन्ध्या कहा गया है और सायंकालीन सन्ध्या सूर्य के रहते कर ली जाये तो उत्तम मानी जाती है। सन्ध्योपासना की विधि भी बताई गई है। गायत्री जप पर भी प्रकाश डाला गया है। प्राणायाम की विधि समझाई गयी है और प्राणायाम मंत्र के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

यज्ञोपवीत एवं विवाह संस्कार के अन्तर्गत 'देवगौण'* की क्या

* देव + गौण; गौण – अप्रधान, गुण सम्बन्धी,
देवगुण–गान, देवगुण – गान वस्तुतः देव–चर्या है।

आवश्यकता है – इसके धार्मिक और सामाजिक सन्दर्भों पर प्रकाश डालते हुए आश जी लिखते हैं कि लड़की (पुत्री) का जन्म–अशौच देवगौण पर ही समाप्त हो जाता है और लड़के का जन्म–अशौच जातकर्म संस्कार के समय समाप्त होता है। मेरा विचार है कि यज्ञोपवीत अथवा विवाह से पूर्व देवगौन की विशेष उपासना पद्धति के द्वारा देवी–देवताओं को मंत्रों द्वारा आमंत्रित करके तथा उनका स्तुति पाठ कर आशीर्वाद प्राप्ति की विशेष चेष्टा की जाती है।

विवाह संस्कार के अन्तर्गत आभूषणों की श्रृंखला में डेजिहोर को शक्ति यंत्र के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। पोश पूज़ा (पुष्पार्चन) की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पति–पत्नी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सरल, व्यावहारिक और प्राकृतिक जीवन जीने का परामर्श दिया जाता है। पत्नी द्वारा अपने पति के पूर्ण समर्पण और पति द्वारा अपनी जीवन संगिनी के प्रति सम्मानपूर्वक विश्वास – यही तो सफल गृहस्थाश्रम का मूल मंत्र है – जाने क्यों आश जी ने इसकी चर्चा नहीं की है।

द्वार पूजा, सप्तपदी, आंगन में स्वगतार्थ 'व्यूग' सजाना और मिष्ठान खिलाकर दूल्हे का स्वागत इत्यादि विवाह सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण कार्य कलापों की सम्यक् चर्चा लेखक ने की है ।

कश्मीरी पण्डितों के गोत्र, कश्मीरी पण्डितों के जातीय व्रत और त्यौहार, पन्न पूजा, तंत्र पूजा, शिवरात्रि, वटुक पूजा आदि – देखा जाये तो पुस्तक के नाम 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' से इन उपविषयों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह विषय भी पर्याप्त रोचक एवं महत्त्वपूर्ण हैं और एक जाति की जातीय गरिमा और सामाजिक प्रतिष्ठा को पूर्ण रूप से जानने के हेतु इनकी जानकारी लाभदायक सिद्ध होती है।

आश जी लिखते हैं कि तांत्रिक पूजा आगम शास्त्रों पर आधारित है। जिस प्रकार वैदिक पूजा का आधार वेद, उपनिषद् और

स्मृति हैं उसी प्रकार तांत्रिक विद्या का आधार आगम शास्त्र है जिसे भगवान शिव ने भक्तों के कल्याण और मुक्ति के लिय कहा है ।

तंत्रों में शिव, शक्ति, गणेश, प्रकृति और पुरुष पाँच तत्त्वों पर ध्यान केन्द्रित रहता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति इस के दो मार्ग हैं। तांत्रिक पूजा मंत्रों से की जाती है और मंत्र सिद्धि से मुक्ति का मार्ग सुलभ होता है।

इसके पश्चात् आश जी ने उस संस्कार की चर्चा की है जिस को मैं 'पूर्णाहुति संस्कार' कहता हूँ और आश जी ने अन्तिम संस्कार नाम दिया है । इसे यदि 'लीलान्त संस्कार' कहा जाये तो उपयुक्त होगा। दाह संस्कार, , दसवें , ग्यारहवें और बारहवें दिन के संस्कार मृत प्रियजन के प्रथम पखवाड़े के अहम् क्रियाकर्म संस्कार हैं। यह क्रम पूरे एक वर्ष तक चलता रहता है।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जलहिं समाना, यह तत कह्यौ गयानी।।
(कबीर)

आजकल निम्नवर्ग तथा निम्न मध्यवर्गीय कश्मीरी पण्डित परिवारों के लिये अन्तिम संस्कार सुहृद की मृत्यु के साथ साथ कई अन्य परेशानियों का कारण बन जाता है और जानते हुए भी आश जी ने ' छोप् छय सोनसिंज़ करक नुँ तुँ रोप सुंज़' (चुप्पी है स्वर्णिम नहीं साधो गे तो रूपहली) सिद्धान्त का पालन किया है। आवश्यकता इस बात की है कि समकालीन सामाजिक जीवन की विसंगतियों के परिप्रेक्ष्य में 'अन्तिम संस्कार' पर प्रकाश डाला जाये।

मैं इस बात से तनिक भी सहमत नहीं हूँ कि पुत्र ही पिता को नर्क में जाने से बचा सकता है क्योंकि मैं उस आदमी को भाग्यहीन समझता हूँ जिसके यहाँ बेटी ने जन्म न लिया हो। यह वास्ताव में पुरुष प्रभुत्व (male chauvinism or male dominance) का दबदबा है।

हमारा यह निजी अनुभव है कि ग्यारहवें दिन की क्रिया में पुत्र के साथ–साथ पुत्री भी अपने मृत पिता अथवा माता का क्रियाकर्म विधि–अनुसार करती है। कैसे और क्यों ? इस लिये पुत्र ही पिता को नर्क में जाने से बचा सकता है – महाझूठ और भ्रामक है। लेकिन दोष लेखक का नहीं है हम सब को इस बात का विश्वास दिलाया गया है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मध्यकाल में हिन्दू नारी का जीवन अभिशाप ग्रस्त रहा है। पुत्री जन्म को दाम्पत्य जीवन का दुर्भाग्य समझना, जन्म लेते ही ज़िन्दा दफना देना और विधवा होते ही आत्मदाह के लिये विवश करना वस्तुतः पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था की क्रूरता का ही परिणाम है। हर अन्याय को तर्क सम्मत ठहराने के लिये स्वार्थानुसार शास्त्रों की व्यवख्या करना कोई नई बात नहीं है।

अन्तिम संस्कार की विशद् व्याख्या के साथ ही आश जी ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना को समाप्त किया है। मैं व्यक्तिगत रूप से आश जी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना धर्म समझता हूँ क्योंकि आश जी ने कश्मीरी पण्डित समाज की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को ध्यान में रख कर इस रचना की सृष्टि की है। अपने धार्मिक–सांस्कृतिक संस्कारों के प्रति समुदाय को सचेत करना, वर्तमान सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में उनकी वैज्ञानिक व्याख्या करना, विश्वास, परम्परा और रीतानुसार उनके सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों को रेखांकित करना कोई आसान काम नहीं था। लेखक अपनी परम्परा और रीत के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं । परम्परा का पालन और रीत का निर्वाह दोनों उनकी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है।

आश जी रूढ़ि के उपासक या प्रशंसक नहीं है और यही इस रचना की ख़ूबी है। परम्परा ग्राह्य है, रूढ़ि त्याज्य। हम कभी भी रूढ़ि के गुलाम बनकर अपनी परम्परा को खंडित नहीं करना चाहते हैं। कश्मीरी पण्डितों की संस्कृति और संस्कारों से जुड़े 'ख्यचिमावस' (खिचड़ी अमासवस्या) के त्यौहार को मैं आश जी के समान ही

सौहार्द–पूर्ण जीवन निर्वाह का त्यौहार मानता हूँ। आज जिसे हम शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व (peaceful coexistence) का सिद्धान्त कहते हैं वही कश्मीर के आदिवासी नागों, यक्षों और अपने आपको सुसभ्य कहलाने वाले आर्यों को परस्पर सद्भावना पूर्ण व्यवहार के बन्धन में बान्ध देता है। आज यह त्यौहार बदली हुई परिस्थितियों में अपनी अर्थवत्ता (significance) खो चुका है यह कहना ठीक नहीं है और इस विषय में आश जी मुझ से सहमत हैं । 21वीं शताब्दी में भी छलकपटमय व्यवहार करने वाले यक्ष सर्वत्र घूमते नज़र आते हैं। तनिक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति का अवलोकन कीजिये। खिचड़ी पकाने की और स्वादिष्ट खिचड़ी खिलाने की आवश्यकता आज भी महसूस हो रही है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के हेतु प्रस्तुत पुस्तक एक सन्दर्भ पुस्तक के रूप में उपयोगी सिद्ध होगी। 'आश' जी को बधाई देते हुए मैं अपनी बात संस्कृत भाषा के इस आदर्श कथन पर समाप्त कर रहा हूँ कि :–

'यस्यां न विद्या तपो न दानं
ज्ञानम् न शीलं गुणे न धर्म
ते मुत्यृ लोके भवभार भूता
मनुष्य रूपेण मृगा चरन्ति ।'

अर्थात् जिनके पास विद्या, तप, दान देने की शक्ति, शील, गुण एवं धर्माचरण निबाहने की क्षमता नहीं है वे पृथ्वी के वक्ष पर व्यर्थ का बोझ है – मनुष्य रूप में पशु समान ।

03.12.2002 ई०

संदर्भ–संकेत

1. 'कश्मीरी पण्डितों के संस्कार' – मोहनलाल आश – आत्मपरिचय पृ०–1
2. 'गायत्री एक वैदिक छन्द है जिसमें आठ आठ वर्णों के तीन चरण होते हैं। उक्त छन्द में रचित एक वैदिक मन्त्र जिस का उपदेश उपनयन संस्कार में द्विज बालक को किया जाता है ।' – बृहत हिन्दी कोश – ज्ञानमण्डल प्रकाशन – वाराणसी, सम्पादक : कालिका प्रसाद – पृ० 379
3. 'टेक–पूछ़' – कश्मीरी पण्डित महिलाओं द्वारा 'तरंगे' के साथ सिर पर धारण किया जाने वाला नागाकार का विशेष शीर्ष–पट।
4. 'अभीद' (कश्म०) संस्कृत – अभेद
'अमीद' शब्द वस्तुतः संस्कृत 'अभेद' शब्द से विकसित हुआ है। यज्ञोपवीत धरण करके बालक का दूसरा जन्म होता है और द्विज कहलाता है। यज्ञोपवीत संस्कारों से संस्कारित होकर वह यह मानकर कि अब वह ब्राह्मण बन गया और उसका द्वितीय जन्म हुआ, हर्षोल्लास से प्रफुल्लित हो उठता है। आज से भदे मिट गया और वह परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों के समान शास्त्रोक्त ब्राह्मण बन गया है। वह अपने गुरु के लिए दक्षणा का जुगाड़ करते हुए अपने निकट सगे सम्बन्धियों से यह कहते हुए कि वह द्विज हो गया और आज से भेद मिट गया है, दक्षणा की याचना करता है और 'अभेद माहरा' अथवा 'अभेद हॅबी' कह कर अपनी अहंकार हीनता का परिचय देता है।

हाथ में थाली लेकर भिक्षा माँगता हुआ कहता है कि 'भिक्षा देहि, अभेद हसॉ/हॅबी' अर्थात् देने योग्य भिक्षा दीजिए। आज से मेरी और आप की परस्पर की दूरी समाप्त हो गयी। मैं द्विज बन गया, मेरा द्वितीय जन्म हुआ, मुझ में और आप में परस्पर अभेद स्थापित हुआ।

– लेखक

'चन्द्रवाख'

(श्रीमती चन्द्रा डासी)

जान–पहचान

विस्थापन के बाद पिछले सौलह वर्षों से कश्मीरी कविता में भक्तिकाव्य का पुनरुत्थान (Revival) हो रहा है। लुटे पिटे कश्मीरी विस्थापित भक्त कवि ने ईश वन्दना को आधार बनाकर दुर्दशा ग्रस्त जीवन को अध्यात्म के अमृतकणों से सिक्त करने का प्रयास शुरु किया। सब ओर से निराश होकर अलौकिक शक्तियों की शरण जाना और ईश दरबार में दुहाई देना तो आतंकी विनाश लीला के भयावह दुःस्वप्न की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। कई कश्मीरी भक्त कवियों के साथ–साथ इस युग में भक्त कवयित्रियों का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा है इनमें श्रीमती बिमला रैणा ('रेश माल्युन म्योन' सन् 1998 ई०, 'व्यथ मा छि शोंगिथ' सन् 2003 ई०), श्रीमती गिरिजा कौल (गुरु दक्षिणा 2001 ई0), श्रीमती मोहिनी कौल (शुहुलनार, 2002 ई0) श्रीमती राजदुलारी कदलबुजू 'मस्तानी' (मन पम्पोश 2002 ई0), श्रीमती जया सिबू रैणा (मांत्रिक भजन दीपिका 1998 ई0) तथा श्रीमती चन्द्रा डासी (चन्द्र वाख) के नाम उल्लेखनीय हैं।

अनन्तनाग कश्मीर की मूल निवासिन् श्री राजनाथ डासी की पत्नी श्रीमती चन्द्रा डासी का 'वाख' संग्रह ' चन्द्र वाख' 2002 ई0 में प्रकाशित हुआ है। चन्द्रा जी एक गृहस्थ महिला होने के साथ–साथ गुरुदरबार की साधिका भी रही है। आपके गुरु स्वर्गीय हरेकृष्ण महाराज थे और उन्हीं की कृपा और आशीर्वाद ने चन्द्रा जी को अध्यात्म–चिन्तन के पथ पर परमसत्य को जानने और पहचानने के लिए प्रेरित किया।

'चन्द्रवाख' पुस्तक का प्रकाशन दिल्ली में हुआ है और लोकार्पण 31 मई 2003 ई0 को जम्मू में हुआ । पुस्तक में चन्द्रा जी के 283 वाख (वाक) संगृहीत हैं । भूमिका घाटी के चार जानेमाने लेखकों द्वारा लिखी गई है – डॉ0 बलजिन्नाथ पण्डित, श्री अमीन कामिल, अर्जुन देव महबूर, तथा मोहनलाल 'आश' । पुस्तक की कुल पृष्ठ संख्या 200 है और मूल्य एक सौ रुपया । लेखन के हेतु दो लिपियों का प्रयोग किया गया है। – देवनागरी तथा नस्तालीक़।

चन्द्रा डासी के 'वाख' विभिन्न भवानुभूतियों से जुड़े हैं । इनमें गुरु उपासना का विशेष महत्त्व रहा है। गुरु कृपा के महात्म्य को रेखांकित करते हुए उनका आशीर्वाद और पथ प्रदर्शन पाने के हेतु कवयित्री प्रतीक्षारत दिखाई दे रही है।

माधुर्य भक्ति से जुड़े विविध आकर्षक और मनमोहक छवि–चित्र इन वाखों को प्रेमरस से सराबोर कर देते हैं । यह इनकी दूसरी विशेषता है । गहन आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन के साथ–साथ कवयित्री ने अलौकिक प्रेम से जुड़ी नाना मधु–स्मृतियों को वाखों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

चन्द्रा जी के वाखों का तीसरा आकर्षण इनके अद्वैतवादी–चिन्तन में निहित है। ' जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी' कबीर के इस सोच पर चन्द्रा जी मोहित हैं। यह सब ब्रह्म की आनन्द लीला है एक से अनेक बनने की इच्छा का प्रतिफलन।

चन्द्रा डासी के वाखों का चौथा आकर्षण उनके इस एहसास में है कि मौत जीवन की अन्तिम परिणति है, एक हक़ीक़त है, मानव जीवन के विकास की चरम सीमा है, सफ़र का अन्तिम पड़ाव है। वह निराशावादी नहीं है बल्कि ज़िन्दगी की इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए आत्म सन्तोष के साथ इसका स्वागत करती है। चन्द्र जी ने यत्र तत्र अपने वाखों में शक्ति पूजा के प्रति अपनी निष्ठा और विश्वास को व्यक्त किया है। कश्मीर शताब्दियों से शक्ति उपासना का केन्द्र रहा

है और चन्द्रा जी भी इसी परम्परा के साथ अपना साधनात्मक जीवन जोड़ कर सृजन के प्रति संकल्पबद्ध दिखाई देती है। यह इन के वाखों का पाँचवाँ आकर्षण है।

एक सजग साधिका के रूप में चन्द्रा जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, वासना एवं अहं भाव जैसे छः शत्रुओं के साथ–साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण पाने को जीवन की सिद्धि एवं सफलता के हेतु परमावश्यक माना है। 'इन्द्रियों को वश में करना' तथा 'इन्द्रियों के वश होना' दो विपरीत अवस्थाएँ हैं। आवश्यकता इस बात की है कि साधना की भट्ठी में साधक तप कर कुन्दन हो जाये तब ज्ञान चक्षु खुल जायेंगे और आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि सम्भव होगी। चन्द्रा जी अपने विभिन्न वाखों में आत्म–निग्रह पर बल देती है और यह इनके वाखों का छठा आकर्षण है।

कवयित्री ने अपने वाखों में सत्संग को भी अद्‌भुत की पहचान के लिये साधन के रूप में व्यवहार में लाया है। परम सत्य को खोजना और महसूस करना साधक की सत्यनिष्ठ साधना पर निर्भर करता है। नौधा (नवधा) भक्ति के विभिन्न रूपों की अपनी विशिष्ट भूमिका रहती है और सत्संग में लय और लीन होना तो आत्मनिवेदन (complete surrender) की पराकाष्ठा है। चन्द्रा जी ने अपने आपकी पहचान (self realisation) को नितान्तावश्यक माना है और यह उनके वाखों का सातवाँ आकर्षण है।

इसमें सन्देह नहीं कि चन्द्रा डासी में सृजन की अद्‌भुत क्षमता है लेकिन गहनानुभूतियों के क्षणों को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना ज़रूरी है। आवश्यक नहीं कि हर प्रयोग अपने आप में सफल हो। वर्षों खोज करते रहने पर खदान में वह पत्थर हाथ लगता है जिस में हीरा कहलाने की क्षमता निहित होती है।

चन्द्रा जी का यह प्रयास समकालीन कश्मीरी भक्ति काव्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। 'वाख' पुनः अभिव्यक्ति का एक

सशक्त साधन बन रहा है। लल्लेश्वरी के अध्यात्म की गूँज दिशाओं में पुनः सुनाई दे रही है। आत्मानुभव पर आधारित ब्रह्मानन्द की स्रोतस्विनी पुनः प्रस्फुटित हो रही है – यह जीवन को सार्थक बनाने के शुभ लक्षण हैं और महिलाओं का योगदान इस दिशा में स्तुत्य है।

निःसन्देह चन्द्र जी का यह प्रयास यात्रा का अगला पड़ाव सिद्ध होगा ।

04.08.2003 ई०

'क्षमापोश'

(बदरीनाथ 'अभिलाष')

दृष्टिक्षेप

कश्मीर में ज़िला पुलवामा के अछ़न गाँव के मूल निवासी पण्डित बदरी नाथ 'अभिलाष' सन् 1942 ई0 में स्वर्गीय पण्डित काशीनाथ कौल के घर अछ़न गाँव में जन्मे और दर्शनलाल पण्डिता के दत्तक पुत्र के रूप में इनकी परवरिश होने लगी। मैट्रिक की परीक्षा पास करके व्यवसाय में जुट गये और साथ ही गाँव में स्थित भैरव महाराज जगन्नाथ के अस्थापन* के प्रति आकर्षित हुए। यौवनावस्था में ही अद्‌भुत के रहस्य को जानने पहचानने की उत्कट इच्छा गहराने लगी और अध्यात्म के प्रति नत–मस्तक होकर लौकिक और अलौकिक की बारीकियों को समझने का प्रयास करने लगे। प्रेम और श्रद्धा के योग से उनके मानस में भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो उठी और बदरीनाथ ईश्वर भक्ति में लीन होकर एक गृहस्थ साधक के रूप में जीवन निर्वाह करने लगे। यही वह समय है जब सन् 1989 ई0 में आतंकी हाहाकार से पीडित होकर अन्य भाई बन्धुओं के साथ बदरीनाथ घर छोड़ कर जम्मू पहुँचे और जीवन के कटु यथार्थ का सामना करते हुए अस्तित्व की रक्षा के हेतु भीषण संघर्ष में जुट गये। दुर्भाग्य वश गार्हस्थिक जीवन अकस्मात् दुर्घटनाग्रस्त हुआ। यह दुर्घटना वज्रपात से कम न थी। बदरीनाथ कुछ समय के लिये टूट कर बिखर गया, जीवन के प्रति कोई आकर्षण मन में शेष न रहा लेकिन कुछ समय के

* कश्मीरी – अस्थापन;
संस्कृत – स्थापना, देवालय, देवस्थान, देवागार
कश्मीरी – थापना

पश्चात् सम्भल कर पुनः अद्भुत की तलाश में जुट गये । अनुभूति के अनमोल क्षण और आश्चर्य चकित कर देने वाली पराशक्ति (Transcendental power) सर्जन की प्रेरणा देती रही और एकत्र किये गये मौक्तिक कणों ने 'क्षमापोश' के पृष्ठों पर अपनी आभा बिखेर दी। इस काव्य संग्रह में 'अभिलाष' की भक्ति परक रचनाएँ, लीलाएँ एवं 'वचन' गीत संगृहीत हैं । इसका प्रकाशन सन् 2003 ई० में हुआ। कश्मीरी भाषा के दो जाने माने कवियों – माखनलाल कँवल एवं मोहनलाल आश ने इसकी सरगार्भित भूमिकाएँ लिखी हैं । मृखपृष्ठ श्री प्यारेलाल स्वदेशी ने तैयार किया है और रचनाओं को श्री आर० एल० जौहर ने व्यवस्था प्रदान की है। संगह में कुल 48 रचनाएँ हैं जिनके द्वारा एक भक्त कवि निश्छल हृदय से अद्भुत को जानने पहचानने का प्रयास करता हुआ दिखाई दे रहा है। पुस्तक के कुल 122 पृष्ठ हैं और मूल्य 50 रुपये । कवि ने अपने पूजनीय पिता श्री के नाम इसे समर्पित किया है।

o o o

अभिलाष के भक्ति काव्य का पहला आकर्षण है – निर्मल और निश्छल भावाभिव्यक्ति । इन्हें किसी सम्प्रदाय, वर्ग या भक्ति आन्दोलन से जोड़ना व्यर्थ होगा। इन्होंने एक साथ निर्गुण–सगुण का समन्वय करके दास्यभाव की भक्ति को जीवन शक्ति के रूप में स्वीकारा और आत्मनिवेदन के संकल्प को ग्रहण करते हुए अपने इष्ट के चरणों में सर्वस्व निछावर कर आत्मा समर्पण की प्रथा को निबाहया है। अद्भुत है इनका त्यागमय अनुरागपूर्ण संकल्प–इष्ट के प्रति पूर्ण निष्ठा और दृढ़ विश्वास । इनके भक्ति काव्य में निस्सन्देह ज्ञानानुभूति का अपना महत्त्व है लेकिन ईशकृपा एक अलौकिक प्रसाद है जिसे प्राप्त हुआ वही निहाल हो जाता है। कवि ने निर्गुण–सगुण की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए शिवाराधना को जीवन ध्येय के रूप में स्वीकारा है। वे मोहित हैं – शिव के प्रति लेकिन शिव अपने आप में तब तक शव है जब तक उसे शक्ति का सहयोग प्राप्त न हो और इसी में जीवन विकास का

रहस्य निहित है। सत् चित् और आनन्द स्वरूप शिव के प्रति अपनी निष्ठा के अनुरूप श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हुए कवि शंकर से साक्षात् रूप में प्रकट होने के हेतु सप्रेम निमन्त्रण देते हुए विनीत शब्दों में कहते हैं –

'दर्शन सुख से कर ले कृतार्थ भक्तजन आस लगाए बैठे हैं
शंकर ! स्वीकारो निमंत्रण हमारा।
छोड़ दे, पुरानी बातों को, भुला देना गिले शिकवे
शंकर ! स्वीकारो निमन्त्रण हमारा।
ईश पथ पर चलने हेतु सहना होगा संकट
देहाभिमान गलाना होगा
देख देख के विचलित हो जाता मन मेरा
शंकर स्वीकारो निमन्त्रण हमारा।'

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 9,10,11)

सहज हृदय से एक निश्छल भक्त दयानुग्रह पाने हेतु आशुतोष को मनाने का प्रयास करता हुआ साधना मग्न दिखाई देता है। वह आशुतोष के चारित्रिक गुणों से परिचित है उन्हें विश्वास है कि डूबती नैया अकस्मात् भँवर से बाहर निकल कर पार लग जाती यदि जटाधारी के मुखमंडल पर तनिक मुस्कान खिल उठती । ज़िन्दगी के वीराने में बसन्त की कोंपलें फूट पड़ती । बादामों के वृक्ष पुष्पित होकर अद्भुत छवि बिखेर देते और अलौकिक नाद सौन्दर्य से दिशाएँ गूँज उठती। आवश्यकता है – ईश कृपा की, भगवद् अनुग्रह की। अपने दुर्दशाग्रस्त वर्तमान की अश्रुसिक्त व्यथा–कथा का हवाला देकर कवि इस प्रकार शिवस्तुति करते हुए इष्ट देव को मनाने का संकल्प दोहराते हैं:–

रंगीन फूलों के गुच्छे बनाकर
चरणों में निछावर कर दूँगा
नहीं ज्ञात है पूजा मन्त्र

कैसे कर लू अर्चन तेरा।
अभिलाष फंसा है भव चिन्ता में
तभी तो मनसा दुविधा ग्रस्त
मुक्ति मिले इस भव संकट से
कैसे कर लूँ अर्चन तेरा ।'

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 34)

o o o

'अभिलाष' के भक्ति काव्य में आत्मनिवेदन के साथ-साथ चिन्तन की गरिमा और विभिन्न ज्ञान धाराओं की विचारोत्तेजक अनुगूंज एक साथ सुनने और मानस के भीतर निनादित होने को मिलती है। वे मुख्यतः 'स्वयंप्रकाश' अर्थात् 'अहं ब्रह्मस्मि' के अद्वैतवादी चिन्तन से प्रेरित प्रभावित रहे हैं परन्तु इसके साथ-साथ 'वहदतुल वजूद' के दार्शनिक चिन्तन, वेदान्त की तुरीयावस्था तथा सूफियों की अलौकिक प्रेमसाधना ने भी इन्हें प्रभावित किया है जहाँ हकीक़त की मंज़िल पर पहुँचकर साधक लाहूत की अवस्था प्राप्त करता है और ब्रह्मानन्द में लीन हो जाता है। भावयोग के साथ-साथ अभिलाष ज्ञानयोग में भी रूचि रखते हैं। मूलतः वे अपनी परम्परा – लल्लेश्वरी, रुपद्यद, परमानन्द, गोविन्द कौल, भाग्यवान द्‌यद, मास्टर ज़िन्द कौल आदि से पूर्ण रूपेण जुड़े हुए दिखाई देते हैं। साधानात्मक जीवन पथ की विभिन्न अड़चनों से वे पूर्ण परिचित भी हैं और उनके प्रति सावधान भी हैं। इन्द्रिय-निग्रह के साथ-साथ भौतिक जीवन के क्षुद्र आकर्षणों और मनःस्थितियों को वश में करना नितान्तावश्यक है। आत्मानन्द प्राप्ति के हेतु चिताकर्षक भौतिक बन्धनों से मुक्त होकर विशुद्धावस्था की ओर बड़ना साधनात्मक जीवन का प्रमुख ध्येय होता है। इसी लिये 'अभिलाष' लिखते हैं :-

1. लोभ से क्षोभ ग्रस्त हो जाता है मन।
2. क्रोध से खों जाता है हृदयानन्द ।

3. मोह मेरा घूम रहा है कोसों तक ।
4. कामदेव छीन लेता है जिह्वा से राम नाम ।
5. अहंकार ने बन्धक बना दी पहचान मेरी।
6. तप और जप से एक एक सीढ़ी चढ़ता जा
7. मूर्ख–बुद्धि दुग्ध सदृश ज्ञान ज्योति से नहला उठती है।
8. पर–पीड़ा को अपना लोगे वही है परोपकार ।

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 21, 43–45)

भक्ति काव्य में विशेष कर दास्य भाव की भक्ति में ईशानुग्रह का अपना विशेष महत्त्व है। जिसे यह अनुग्रह प्राप्त हो जाता है बसन्त–पूर्व ही उसके जीवन में बसन्त खिल उठता है। ईशानुग्रह की दैवी शक्ति प्राप्त कर भक्त जीवन के गुप्त रहस्यों से परिचित हो जाता है। उसके भीतर आनन्द की स्रोतस्विनी फूट पड़ती है। वह बाह्याकर्षणों से विमुख होकर अपने भीतर की दुनिया में खो जाता है। भौतिक आकर्षणों के बन्धन से मुक्त होकर वह अलौकिक संसार की विभूतियों में लय हो जाता है। इस लयावस्था की प्राप्ति के हेतु पथ–प्रदर्शक का होना नितान्तावश्यक है। यहाँ 'बिनु गुरु गत' नहीं । गुरु ही शिष्य को साधना प्रधान जीवन निर्वाह की विधि से परिचित कराता है। अग्निपथ पर चलने का सामर्थ्य प्रदान करता है। मन ही मन ज्ञान–गंगा प्रवाहित कर पार उतरने की न केवल प्रेरणा देता है अपितु शक्ति भी प्रदान करता है। गुरु कृपा ही भक्त के मानस में ज्ञान–दीप प्रज्वलित कर उसे परमानन्द का आभास दिलाती है। 'अभिलाष' अपने गुरु के प्रति नत–मस्तक होकर उनके महात्म्य को स्वीकारते हुए लिखते हैं :–

'लम्बा सफ़र मंजिल दूर मिल जाता सद्‌गुरु कोई
तारक मालाओं को गिनना है
अंजुलि भर भर कर पीना है दरिया
किस मन्त्र से मिले सिद्धि
यही पूछना विद्वानों से

नहीं जानता किस विधि ईश्वर
कब कैसे लेंगे परीक्षा मेरी
आशाएँ सँजोई हैं, अरमान टिके हैं उम्मीदों पर
नहीं जानता किस विधि ईश्वर
कब कैसे लेंगे परीक्षा मेरी।'

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 39)

'अभिलाष' को दृढ़ विश्वास है कि कर्मानुसार जीव को फल की प्राप्ति होती है। अतः निस्वार्थ रूप से अपने कर्तव्य कर्म को निबाहना और फल की आशा न करना जीव के हाथ में है। यहीं इन्द्रिय–निग्रह की बात भी सामने आती है। श्रीमदभगवदगीता ' में वर्णित कर्म योग के मूल सिद्धान्त से कवि भली भाँति परिचित है। उसे विश्वास है कि वहाँ कोई सिफारिश, घूस के रूप में शाहतोस का शाल या फर्शी गलीचा (कालीन) या मोबाइल फोन काम नहीं आता। वहाँ चित्रगुप्त जैसे कम्प्यूटर विशेषज्ञ बैठे हैं और प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का हिसाब रखते हैं। वहाँ हथ–चक्की अपने हाथों से चला कर कर्म–फल को प्राप्त करना होगा। कवि लिखते हैं :–

'स्वकर्म–कुकर्म का होगा हिसाब
थान पर शुरु होगी पूछ ताछ
दूध का दूध, पानी का पानी
कर्म जाल में उलझे हो।
बन्धे हो कर्माकर्षण में, दोषारोपण पर – जन पर
वैर को मत आने दे भीतर
अज्ञान समुद्र में खोजना मत
कर्म जाल में उलझे हो।
इक दिन प्राण अटक जायेंगे देह होगी निश्चेष्ट
अपरिचित रहे सद ज्ञान से

महाकाल नहीं लेता रिश्वत
कर्म जाल में उलझे हो ।

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 4–5)

o o o

'क्षमापोश' काव्य संग्रह में शक्ति उपासना के कई चिताकर्षक बिम्ब देखने को मिलते हैं। प्राचीन काल में कश्मीर शक्ति उपासना का केन्द्र रहा है। शिवोपासक भी बिना शक्ति के शिव अस्तित्व को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं। शक्ति ही शिव की प्राण शक्ति, सुन्दरम् का संचित भण्डार, जीवन विकास की आधार भूमि, शिव की चेतनता तथा आशाओं के फलीभूत होने का मूल कारण है। वह भूमि की भूमिका निबाह कर जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। शक्ति पुष्प–वाटिका में फैली सुगन्ध के समान जीवन को महका देती है। शक्ति माँ के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए अभिलाष जी लिखते हैं :–

तुलामुला में हो महाराज्ञी देवी सुनाती हो अपना आदेश
वहीं ड्योढ़ी पर शुभ फल दे वरदान दे, वरदान दे।
अपनी बारी पर चले कितने कर्मों का फल संग लेकर
कटु–मधु की पहचान दे वरदान दे, वरदान दे।
दुग्ध पिला गोदी में लेकर मिठास की पहचान दे
गंगा की अजस्र धार दे वरदान दे, वरदान दे।

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 6–8)

'क्षमापोश' भक्ति काव्य–संग्रह में निम्नलिखित भाव–बिन्दुओं पर भी अभिलाष ने गहराई के साथ सोचा है और अपनी भीतरी प्रतिक्रिया व्यक्त की है:–

1. भक्ति में आत्मग्लानि एवं पश्चाताप का महत्त्व
2. परमब्रह्म के प्रति विरहानुभूति
3. इन्द्रिय दमन एवं आत्मनिग्रह

4. सूफ़ी प्रेमाभिव्यक्ति एवं अद्‌भुत के प्रति आकर्षण
5. नूरे इलाही : दिव्य रहस्य
6. मृत्यु आभास

o o o

विस्थापन की पीड़ा को भी कवि ने ईशवन्दना के माध्यम से व्यक्त किया है। पिछले पन्द्रह वर्षों से अभिलाष हम सब के साथ घर से बेघर होकर मातमी माहौल में जीने के लिये विवश है। तपती धूप में जब बिना बिजली पानी के अस्तित्व की पीड़ा सताने लगती है, जब कॅलाशनकोपी यमदूत आतंकी मुद्रा में उस के जेहन के द्वार पर दस्तक देता है तो वह पीड़ा विह्वल होकर ईश कोप के इस अविश्वसनीय रूप पर आश्चर्य प्रकट करता है । कभी कभी उसे पूर्व स्मृति तड़फडाने लगती है। वह घर लौट कर जाने के लिये तड़प उठता है। उसे मातृभूमि की पुनीत स्मृति अधीर कर देती है। उसके स्मृति पटल पर अंकित हो जाते हैं – सांस्कृतिक सम्पन्नता के वैभवशाली चित्र । लल्लेश्वरी के एक वाक् (वाख) का पद – ज़ूॅ छुम ब्रमान गर् गछ़ हा' (जी मचलता है घर जाने हेतु) उसे प्रेरित कर रहा है सर्जन के हेतु और इसी पद के आधार पर एक 'वचन गीत' को बाह्याकार प्रदान करता है जिसमें उसके वर्तमान कालीन जीवन की सारी व्यथा, वेदना शब्दों के माध्यम से मुखर हो उठती है और व्यवस्था पर तीखा चुभता व्यंग्य दिशाओं को चीरता हुआ मानस पटल पर अंकित हो जाता है :–

'पराये घर में रहते बीता बहुत समय
जी मचल रहा घर जाने को,
घर मेरा सुन्दर स्वर्ग समान
जी मचल रहा घर जाने को,
सुगन्ध हीन हो गया जीवन
फीका पड़ गया रंग उसका

दुर्दशा का है वही प्रमाण
जी मचल रहा है घर जाने को,
अभिलाष का ठिकाना छूट गया
बना कारण प्रवास का
कहाँ देखता 'पुरखू' और 'दुमाना' ।[1]
जी मचल रहा घर जाने को ।

(मूल कश्मीरी कविता का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ0 96)

शब्द प्रयोगों की दृष्टि से 'क्षमापोश' लीला–संग्रह का अपना विशेष महत्त्व है। सहज, शुद्ध, सरल, ठेठ कश्मीरी शब्द–प्रयोगों की दृष्टि से यह रचना भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन के लिये प्रेरित करती है। कहावतों और मुहावरों के समुचित प्रयोग से अभिव्यक्ति सशक्त एवं हृदयग्राह्य बन पड़ी है। कविता की एक काव्य पंक्ति में कहावत अथवा मुहावरे का प्रयोग – 24 कैरट सोने की अँगुली मुद्रा (मुद्रिका) में एक अनमोल नगीना। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

1. खॉर खॉली ग्रटुॅ बॅल् नच़नावन – पृ० सं० 45
2. ठानुॅ रोस बानुॅ म्योन कति रटि छावुॅ जोश – पृ० सं० 13
3. हा कृष्ण म्य सूत्य कर यी च़ वादा
   बोद म्यॉन् युथ बनि राधा चॉन । – पृ० सं० 71
4. 'अभिलाष रोट गरुॅ गांगले – पृ० सं० 34
5. मूल मूरखन दवद हिश बोद छि प्रज़लान – पृ० सं० 45
6. दिहन अन्दर यसुंद दरबार म्यॅ
   सुई सरकार छ़ारुन छुम – पृ० सं० 55
7. हृदयिकि शीशि मंज़ुॅ ईशर छी वुछान – पृ० सं० 70
8. अन्हॉर्य अरमान गॅयि नुॅ वरि
   करि सचॅ मय अपज़े पानुॅसुॅय । –पृ० सं० 40

---

1 जम्मू में पुरखू और 'दुमाना' उन दो गाँव का नाम है जहाँ विस्थापित कश्मीरी पण्डितों के कैम्प लगाये गये हैं।

9\. क्रंज़न मंज रेश रटिथ यिम ज़ुव
तिमन बूज़ुम छु समखानय – पृ० सं० 64

ठेठ शब्द प्रयोग

थ्यर (कश्मीरी) – मूल शब्द संस्कृत – ' स्थिर'
लूप (क०) – मूल शब्द संस्कृत – ' लोप '
व्यस्मर (क०) – मूल शब्द संस्कृत – 'विस्मृति'
वल (क०) – ठेठ शब्द, अर्थ – विधि, ढंग, तरीका
दाथुर (क०)– ठेठ शब्द, अर्थ –वह सामान जो कारीगर प्रयोग में लाते हैं।
नॉन्गुॅर (क०) – ठेठ, अर्थ– पीछे पड़ जाना, पिंड न छूटना।
ट्यकॅर (क०) – ठेठ, अर्थ –छोटी हँडिया
छ़पि छ़्यारिस (क०) – ठेठ, अर्थ – लुका छिपी
अनुभावतम (क०) अर्थ – अनुभव कर लेना,
(यह कश्मीरी भाषा में कवि का अपना मौलिक प्रयोग है)

o o o

'क्षमापोश' निस्सन्देह समकालीन कश्मीरी भक्ति काव्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। संगृहीत रचनाओं का अध्ययन करने के बाद यह बात स्पष्ट होती है कि अभिलाष कवि होने के साथ–साथ स्वयं भक्त और साधक हैं। 'क्षमापोश' उनकी वर्षों की तपस्या का वरदान है। चिन्तन और विचार की दृष्टि से ये लीलाएँ गहन गम्भीर भाव–बिन्दुओं पर केन्द्रित हैं। लक्ष्य है – दिव्य प्रकाश की पहचान और आत्म बोध । मनुष्य के लिये सबसे विकट समस्या है अपनी पहचान, अपने आपको जानना और समझना, सृष्टि विकास के कारण से अवगत होना, लीलामय जगत के रहस्यों से परिचित होना । इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वे इष्ट के चरणों में पूर्ण समर्पण

कर देते हैं और दिव्यानुग्रह के हेतु नतमस्तक साधनारत दिखाई देते हैं। सर्जन भी वस्तुतः उसी साधना का परिणाम है। भीतर ही भीतर जोत (Flame) सुलग रही है, सफ़र लम्बा है, पथ कंटकमय परन्तु संकल्प दृढ़ और दिशा सुनिश्चित। काव्य लेखन भी उसी साधना का परिणाम है। इसे भाव–योग कहते हैं । वह कहने के लिये विवश हो जाता है, बात की तह तक जाने के लिये अधीर हो उठता है और तब कहीं उसे यह मालूम हो जाता है कि रंग और बेरंग में, आकार और निराकार में, स्थूल और सूक्ष्म में, व्यक्त और अव्यक्त में, लौकिक और अलौकिक में, अपने और पराये में क्या अन्तर है। वह पहुँच जाता है यथार्थ के निकट और लय हो जाता है दिव्यानन्द में ।

'जब मन का द्वार खोल दोगे
तभी कार्य–सिद्धि होगी
समय समय पर ईश ध्यान में लीन रहोगे
भीतर ही मीत मिलेंगे ।'

(मूल कश्मीरी पद्यांश का भाषानुवाद 'क्षमापोश' पृ–22)

25 मार्च 2004 ई0

ЖЖЖ

लेखक की अन्य प्रकाशित पुस्तकें

1. 'शारदा' गाँव, तीर्थ और विद्यापीठ
   (हिन्दी) सन् 2002 ई०
2. 'साहित्य और विस्थापन' : सन्दर्भ कश्मीर
   (हिन्दी) सन् 2003 ई०
3. 'अरज़्थ' शोध निबन्ध
   (कश्मीरी) सन् 2003 ई०
4. 'विमर्श' शोध निबन्ध
   (कश्मीरी) सन! 2005 ई०
5. 'परमानन्द' कश्मीरी भक्त कवि
   (हिंदी) सन् 2005 ई०
6. 'कश्मीर की सन्त परम्परा' सम्पादित ग्रन्थ
   (हिन्दी) सन् 2005 ई०

प्रो० (डॉ०) भूषणलाल कौल

अहिन्दी भाषा–भाषी जम्मू–कश्मीर क्षेत्र के श्रीनगर में 5 सितम्बर 1941 को जन्मे डॉ0 कौल एक विशिष्ट प्रतिभावान शिक्षक, लेखक और समालोचक हैं । आपका व्यक्तित्व अत्यधिक सौम्य और सौहार्द्र से परिपूर्ण है। जम्मू–कश्मीर विश्वविद्यालय से एम0ए0 हिन्दी परीक्षा प्रथम श्रेणी में सर्वाधिक अंकों सें उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने 'कश्मीरी तथा हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर अपना शोध कार्य प्रारम्भ किया। शोध परियोजनाएं सफलता पूर्वक पूरी होने पर आपको क्रमशः पीएच० डी0 एवं डी० लिट् की उपाधियां प्राप्त हुईं । जीवन पर्यन्त आप अध्ययन और अध्यापन को अपना पहला कर्तव्य समझते रहे हैं। एक सफल शिक्षक के रूप में आप अपने छात्रों में अत्यन्त लोकप्रिय रहे और कालान्तर में विभिन्न विषयों – धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक, पर अपने प्रवचनों/भाषणों से एक विशाल जन–समुदाय में भी विद्वता और विनम्रता के कारण चर्चित हैं।

आप एक अनुभवी शिक्षक और कुशल प्रशासक भी रहे हैं । कश्मीर विश्वविद्यालय में तीन दशक से अधिक समय तक विभिन्न दायित्वों – अध्यक्ष छात्र कल्याण विभाग (Dean Students' Welfare) और स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष पदों पर आसीन रहने के उपरान्त सितम्बर सन् 2001 ई0 में सेवानिवृत्त हुए।

अब तक एक सौ से अधिक आपके शोध–लेख देश में छप रहे कई लोकप्रिय पत्र–पत्रिकाओं में छप चुके हैं। विभिन्न विषयों, समीक्षा लेखों, शोध–निबन्धों पर आधारित लेखों से सुसज्जित सात पुस्तकें (हिन्दी और कश्मीरी में) भी प्रकाशित कर चुके हैं ।

एक सफल अन्वेषक और समर्थ सीमक्षक के रूप में निरन्तर कार्यरत रहने के कारण अनेक सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थानों ने आपको सम्मानित किया है – जिनमें जम्मू पॅनोरमा एवं 'प्रेमनाथ भट्ट म्यॅमोरियल ट्रस्ट' द्वारा सन् 2003 ई0 में 'पण्डित प्रेमनाथ भट्ट अॅवार्ड; नागराद अदबी संगम द्वारा सन् 2004 ई0 में 'वितस्ता अॅवार्ड; पीरपंचाल – सी–ई–एस–ईएस जम्मू–कश्मीर द्वारा 'अभिनवगुप्त अॅवार्ड' और सन् 2005 ई0 में 'जम्मू कश्मीर सादिक म्यॅमोरियल कमेटी' द्वारा दिया गया अवार्ड विशेष उल्लेख्य हैं।

आपकी सशक्त लेखनी से आपके ओजस्वी विचार समाज के सभी वर्गो को अनन्त समय तक अविराम मिलते रहें ऐसी हमारी महती कामना है ।

— **प्रकाशक**